मंगल विमर्श

वादे वादे जायते तत्त्वबोधः

वर्ष 1, अंक 4, अक्तूबर-2015
आश्विन, वि. सं. 2072, ₹50

त्रैमासिक

अंदर के पृष्ठों पर

06-10
मंगल सृष्टि मंगल दृष्टि
दामोदर शाण्डिल्य

11-20
वैदिक धर्म और आधुनिक युग
-डॉ. प्रमोदकुमार दुबे

21-28
भारतीय साहित्य की कालजयी अवधारणा
-आनंद आदीश

29-33
भारतीय शिक्षा पद्धति दशा और दिशा
डॉ. राजवीर शर्मा

34-39
रामचरितमानस में नेतृत्व की विचारधारा
प्रो. (डॉ.) गिरीश चंद्र माहेश्वरी

40-43
वैज्ञानिक और धार्मिक दृष्टि से मांसाहार का निषेध
डॉ. देवव्रत आचार्य

44-48
स्वच्छता पर निर्भर है स्वास्थ्य
डॉ. ज्योत्स्ना

49-52
समाज के लिए घातक है साइबर पोर्नोग्राफी
आचार्य विजय रत्नसुंदर सुरिश्वर महाराज

53-61
अंतहीन समस्याओं से पीड़ित गाँव व शहर
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

मुख्य संरक्षक
डॉ. बजरंगलाल गुप्ता

प्रधान संपादक
ओमीश परुथी

संपादक
सुनील पांडेय

संयुक्त संपादक
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

प्रबंध संपादक
आदर्श गुप्ता

प्रकाशक एवं मुद्रक आदर्श गुप्ता द्वारा मंगल सृष्टि, सी-84, अहिंसा विहार, सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली-110085 के लिए प्रकाशित एवं एक्सेल प्रिंट, सी-36, एफ एफ कॉम्पलेक्स, झंडेवाला, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

RNI
DELHIN/2015/59919
ISSN
2394-9929
ISBN
978-81-930883-2-6

फोन नं.
+91-9811166215
+91-11-27565018
ई-मेल
mangalvimarsh@gmail.com
वेब साइट
www.mangalvimarsh.in

मंगल विमर्श पत्रिका में व्यक्त विचारों के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी हैं। संपादक, मुद्रक व प्रकाशक का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

सभी विवादों का न्याय क्षेत्र केवल दिल्ली होगा।

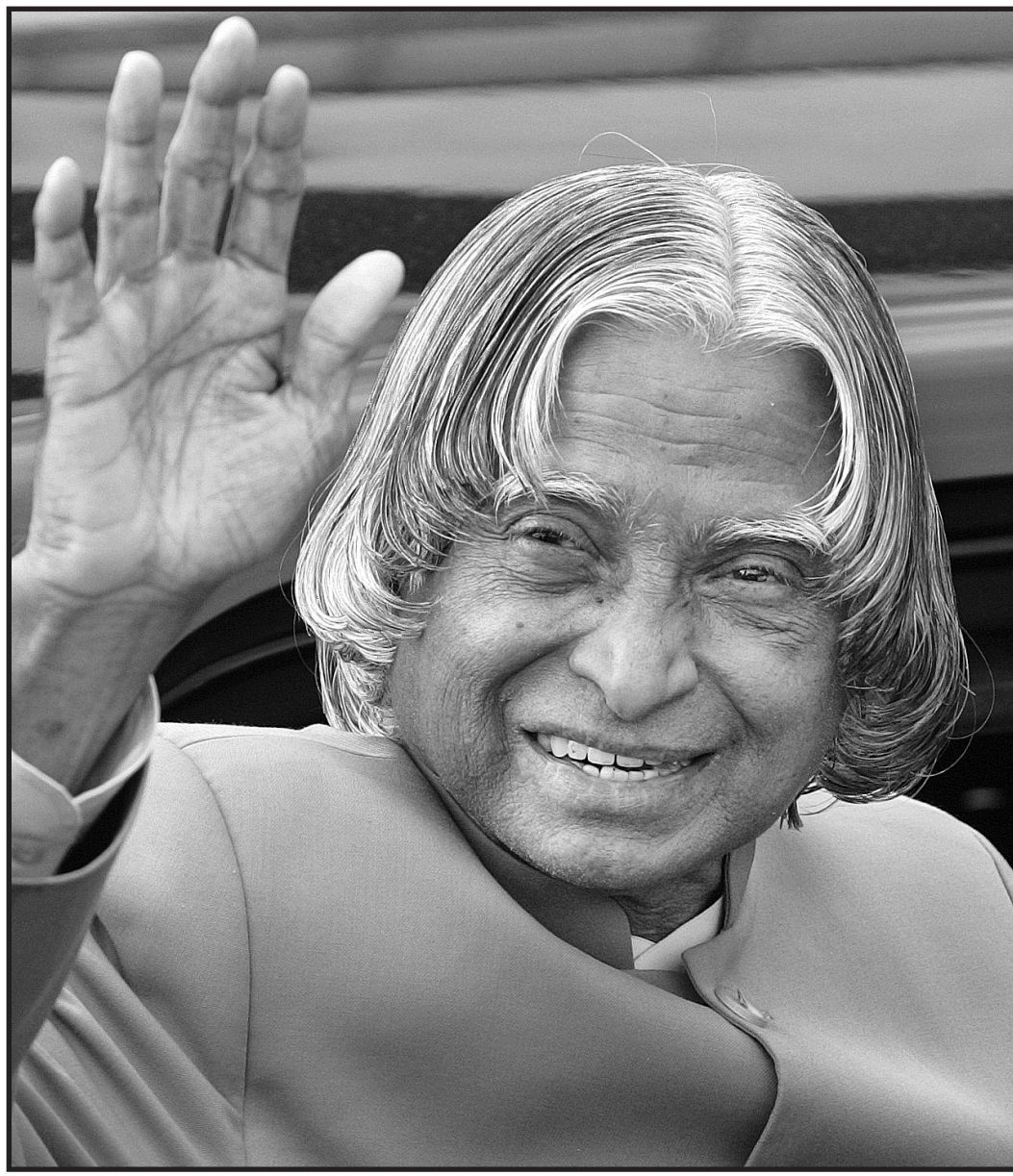

आत्म सम्मान आत्म निर्भरता के साथ आता है।

डॉ. ए. पी. जे अब्दुल कलाम

(15 अक्तूबर, 1931, रामेश्वरम्–27 जुलाई 2015, शिलांग)

अथ

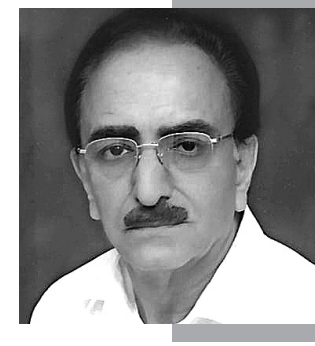

ओमीश परुथी
एसोसिएट प्रोफेसर (से.नि.)
प्रधान संपादक

आमतौर पर उच्च पद पाकर लोगों की प्रतिष्ठा बढ़ती है, लेकिन कुछ विरले ऐसे भी होते हैं, जिन्हें पाकर उच्च पद गौरवान्वित होता है। दिवंगत हुए डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ऐसे ही विलक्षण व्यक्ति थे, जिन्हें पाकर पद का वैभव बढ़ा। वे अति सामान्य स्तर से ऊपर उठ कर अति विशिष्ट पद पर पहुँचे और इतनी महत्ता पाकर भी सामान्य बने रहे, इसी में उनके व्यक्तित्व की विशिष्टता है।

उन्होंने राष्ट्रपति के पद को एक नई पहचान दी। राष्ट्रपति की परंपरागत छवि को छोड़ उसे नए आयाम दिए। राजपथ को जनपथ से जोड़ दिया। उन्होंने अपने राष्ट्रवादी चिंतन-मनन, सहज जीवन शैली व विनयशीलता से सबको आकृष्ट किया। यह उनका विजन ही था, जिसने नीति-निर्धारकों व बुद्धिजीवियों को ही प्रभावित नहीं किया, जनमानस को भी छुआ। युवा पीढ़ी को तो सम्मोहित ही कर लिया ।

उन्होंने भारत को फिर से विश्वगुरु बनाने का स्वप्न देखा। उनकी मान्यता थी कि राष्ट्र समुन्नत तभी हो सकता है, यदि वह सशक्त व समर्थ भी हो। इस महान् लक्ष्य के लिए उन्होंने अपने जीवन को अर्पित कर दिया। अपनी वैज्ञानिक मेधा व तकनीकी ज्ञान के द्वारा मिसाइल निर्माण में देश को दक्षता प्रदान की। अपनी पुस्तक 'इंडिया 2020' के माध्यम से भारत के महाशक्ति बनने की संभावनाओं को उकेरा। इस संदर्भ में युवाओं में उत्सुकता, उमंग व उत्साह पैदा किया। उन्हें स्वप्न देखना ही नहीं, उसे साकार करना भी सिखाया। इस पुस्तक में व्यक्त विचारों का समाहार करते हुए, जाते-जाते भी 'एडवेंटेज इंडिया' नामक पुस्तक लिख गए, जिसका लोकार्पण अभी होना है।

वास्तव में कलाम साहब का जीवन राष्ट्र-निर्माण-अभियान का पर्याय था। उनके करीबी लोग बताते हैं कि वे सदैव 'मिशन मोड' में रहते थे। राष्ट्र- निर्माण की प्रक्रिया में वे शिक्षक की भूमिका को बड़ा महत्त्व देते थे। संभवतः इसीलिए राष्ट्रपति भवन छोड़ने के बाद अगले ही दिन से वे शिक्षण के कार्य में तल्लीन हो गए। बरसों तक चले इस अभियान में कहते हैं, उन्होंने एक करोड़ से अधिक बच्चों व युवाओं से संपर्क साधा। उन्हें संबोधित व उद्‌बोधित किया। अंतिम साँस लेते हुए भी वे यही कार्य कर रहे थे।

वे महान् कर्मयोगी थे। वे जीवन में कर्तव्य- परायणता, सत्यप्रियता, नैतिकता व निष्ठा के कायल थे। उनकी पारदर्शिता व निस्संगता अनुकरणीय थी। शपथ-ग्रहण समारोह में उनके जो स्वजन व मित्र राष्ट्रपति भवन पधारे थे, उनके लगभग एक सप्ताह वहाँ ठहरने के खर्च का सवा तीन लाख रुपए का चैक उन्होंने कार्यालय में जमा करवा दिया और स्वयं किसी से उसका जिक्र भी नहीं किया। ऐसी सत्यनिष्ठता व पारदर्शिता थी उनमें। इसका सूक्ष्मांश भी यदि हम अपने जीवन में उतार सकें, तो यह उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी ।

आनंद ही ब्रह्म है इस प्रकार निश्चय पूर्वक जाना। क्योंकि सचमुच आनंद से ही समस्त प्राणी उत्पन्न होते है। उत्पन्न होकर आनंद से ही जीते हैं। (अंत में) इस लोक से प्रयाण करते हुए आनंद में ही प्रविष्ट हो जाते हैं। मंगल दृष्टि में आनंद की सृष्टि है, परमात्म तत्त्व सुखरूप है और आनंद रूप भी ये मिलकर आत्मतत्त्व मंगलमय है।

दामोदर शाण्डिल्य

मंगल सृष्टि मंगल दृष्टि

'मं' गल' का अंग्रेजी शब्दकोश में समानार्थक कोई शब्द नहीं है। संस्कृत व्युत्पत्ति के अनुसार 'मं+गलयति इति मंगल', अर्थात् जो जीव के मल को गलाता है, वह 'मंगल' है। जैन दर्शन के अनुसार–

गलयदि वीणासयदे द्यादेदि
दहेदि हंति सोधयदे।
वद्धंसेदि भलाईं जम्हा
तम्हा य मंगलं भंणिदं।।

-तिलोय पण्णति स्रोत-
ध्यान सूत्राणि पृ, 110

क्योंकि यह मल को गलाता है, विनष्ट करता है, घातता है, दहन करता है, मारता है, शुद्ध करता है और विध्वंस करता है, इसलिए मंगल कहा गया है।

जैन दर्शन में द्रव्यमल, भावमल आदि हैं तथा वैदिक दर्शन में आणव मल, माया मल और कार्म मल है, इन को जो दूर करता है, वह है–मंगल।

मंगल की दूसरी व्याख्या है–

'अह्वां भंगं सोक्खं लादि'
(तिलोय पण्णति 'पू')

–जो भंग (मोद) को, सुख को लाता है वह मंगल है।

मंगल के पर्यायवाची शब्द हैं– पुण्य, पूत, पवित्र, शिव, भद्र, क्षेम, कल्याण, शुभ और सौख्य। जो पुण्यार्थक है, वह ही मंगलार्थक है। जो आनंद और सुख को उत्पन्न करने वाला है वह मंगल है।

वेद में 'मंगल' शब्द

हमारी संस्कृति, सभ्यता, राष्ट्रत्व, चिंतन, विचार, सोच, व्यवहार, संस्कार, जीवन-पद्धति

जीवन-मूल्यों के मूल स्रोत 'वेदों' में 'मंगल' शब्द कई सूक्तों में है, पर व्यावहारिक जीवन से संबंध रखने वाले 'विवाह सूक्त' की दो ऋचाओं में वधू का वर्णन केवल एक शब्द में किया है और वह शब्द है 'मंगलमयी'। विवाह समारोह में आए अतिथियों को मंत्रदृष्टा कहते हैं–

सुमंगलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वायाऽथास्तं वि परेतन।।

ऋ,10/85/33

यह वधू शोभन कल्याण वाली है। समस्त आशीर्वादकर्ता आएँ और इसे देखें। इस विवाहित को उत्तम सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद देकर अनंतर सब अपने घर चले जाएँ।

वधू के पतिगृह प्रवेश के समय वैदिक ऋषि वधू से कहते हैं–

'अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमा विश,
शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।'

ऋ, 10/85/43

हमारी संस्कृति, सभ्यता, राष्ट्रत्व, चिंतन, विचार, सोच, व्यवहार, संस्कार, जीवन पद्धति व जीवन मूल्यों के मूल स्रोत 'वेदों' में 'मंगल' शब्द कई सूक्तों में है, पर व्यावहारिक जीवन से संबंध रखने वाले 'विवाह सूक्त' की दो ऋचाओं में वधू का वर्णन केवल एक शब्द में किया है और वह शब्द है 'मंगलमयी'।

–मंगलमयी होकर पति के घर में प्रवेश कर। तू हमारे आप्त बंधुओं के लिए तथा पशुओं के लिए सुखकारिणी हो। इन दो ऋचाओं में मंगल का अर्थ है कल्याणपरक और सुखपरक है। ('वैदिक सूक्त संग्रह,' गीताप्रेस)

परमात्म तत्त्व आनंद रूप है

परमात्मा परब्रह्म को उपनिषदों में सुख रूप में आनंद रूप माना गया है। परमात्म तत्त्व निरतिशय हैं। सर्व ओर व्याप्त है, सबमें व्याप्त है। तैत्तिरीय उपनिषद् में ऋषि कहते हैं-

'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' (तै, 2/6/1)

– उसकी (सृष्टि की) रचना कर वह उसमे प्रवेश कर गया, अर्थात् सृष्टि में परमात्मा व्यापक है; अतः सृष्टि

और परमात्मा का संबंध व्यापक और व्याप्त का है, जो कि अभेद संबंध है। एक प्रकार से यह सृष्टि ब्रह्म का, परमात्मा का प्रकट शरीर रूप है। व्याप्त व्यापक संबंध में जब परमात्मा आनंदमय है, तो सृष्टि भी आनंदमय ही है। इस निरतिशय आत्मतत्त्व को छांदोग्योपनिषद् में 'भूमा' कहा गया है।

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति
भूमैव सुखं- छा, 7/23/1

'निश्चय जो भूमा है, वही सुख ही है, अल्प में सुख नहीं है, सुख भूमा ही है।' भूमा अर्थात् 'बहु निरतिशय, महान -(शांकर भाष्य)' सृष्टि में सर्वत्र व्याप्त जो चैतन्य आत्मतत्त्व है। यह भूमा अमृत है –

'यो वै भूमा तदमृतमथ'

–जो भूमा (आत्मा) है, वही अमृत है। इसलिए याज्ञवल्क्यजी ने नारदजी से कहा कि सुख चाहो तो आत्मतत्त्व की खोज कर उसका अनुभव करो। (छा. भूमा प्रकरण) यह सुखरूप आत्मतत्त्व मंगलमय ही है।

सुख और आनंद एक ही है

परमात्मा सत् चित् आनंद रूप से सत् अर्थात् अक्षर सातत्ययुक्त चितिशक्ति युक्त, आनंद स्वरूप है, जीव केवल चित् आनंद रूप है, परब्रह्म सत् चित् आनंद रूप है। यह आनंद भी मंगल का ही रूप है।

तैत्तिरीय उपनिषद् में ऋषि कहते हैं–

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।
आनन्दाद् ह्येवं खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
आनन्देन जातानि जीवन्ति।
आनदं प्रयन्त्यभिसविशन्तीति।।

तैत्ति, -3/6

आनंद ही ब्रह्म है, इस प्रकार निश्चयपूर्वक जाना। क्योंकि सचमुच आनंद से ही समस्त प्राणी उत्पन्न होते है। उत्पन्न होकर आनंद से ही जीते हैं। (अंत में) इस लोक से प्रयाण करते हुए आनंद में ही प्रविष्ट हो जाते हैं। (इति-इस प्रकार)

मंगल दृष्टि में आनंद की सृष्टि है। परमात्म तत्त्व सुखरूप है और आनंद रूप भी ये मिलकर आत्मतत्त्व

परमात्मा सत् चित् आनंद रूप से सत् अर्थात् अक्षर सातत्यपयुक्त चितिशक्ति युक्त, आनंद स्वरूप है, जीव केवल चित् आनंद रूप है, पर बह्म सत् चित् आनंद रूप है। यह आनंद भी मंगल का ही रूप है।

मंगलमय है।

हमारे दर्शन की एक प्रेरणा-दुःख से निवृत्ति है- भगवान् बुद्ध के चार आर्य-सत्य, सांख्य दर्शन का प्रथम सूत्र- 'त्रिविधं दुःखम्'; जैन दर्शन का आत्मा शरीर का कनक पाषाण संबंध आदि दुःख निवृत्ति के उपायों की खोज है। ये सभी दर्शन दुःख को अज्ञान तथा कषाय या आवरण दोष का परिणाम मानते हैं। सुख की अनुपस्थिति ही दुःख के मूल में है और आत्मा की अनुपस्थिति ही चरम सुख, परमानंद का कारण होती है। यह बात भारत के जैन-बौद्ध सहित सभी दर्शन मानते हैं। परमात्म तत्त्व सुख आनंद मंगलमय है तो उससे उत्पन्न यह सृष्टि भी मंगलमय है। वेद का प्रसिद्ध शांतिपाठ इस बात की घोषणा करता है–

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

–सच्चिदानंदघन वह परब्रह्म सब प्रकार से पूर्ण है, यह (जगत् भी) पूर्ण (ही) है, (क्योंकि) उस पूर्ण (परब्रह्म) से ही यह पूर्ण उत्पन्न हुआ है। पूर्ण को निकाल लेने पर (भी) पूर्ण ही बचा रहता है। (ईशा. शांतिपाठ)

हमारा जीवन छोटा है। इस विराट् सृष्टि के आनंद की अनुभूति के लिए कोई विरला ही प्रयत्न करता हैं और जो करता है, वह इस मंगलमय आनंद में ही लीन हो जाता है। हमारी संस्कृति के उपासना-संप्रदायों में परमात्मा के हर रूप को केवल एक शब्द में सुशोभित किया है, वह है 'मंगलमय स्वरूप'

मङ्गलं भगवान् विष्णुः
मङ्गलं गरुडध्वजः।
मङ्गलं पुण्डरीकाक्षो
मङ्गलायत नो हरिः।।
मङ्गलं भगवान् वीरो,
मङ्गलं गौतम गणी।
मङ्गलं कुंद कुन्दाद्यो,
जैनशासनस्तु मङ्गलं।।
मंगल भवन अमंगल हारी।
द्रवउ सो दशरथ अजिर बिहारी।।
मंगल मूरति मारुति नंदन।
सकल अमंगल मूल निकंदन।।
सर्वमङ्गलमांगल्ये, शिवे सर्वार्थसाधिके,
शरण्ये त्र्यंबके गौरि, नारायणि नमोऽस्तु ते।।
पवन तनय संकट हरण, मंगल मूरति रूप।
राम लखन सीता सहित, हृदय बसहु सुर भूप।।

पुष्टिमार्गीय वल्लभ संप्रदाय के मंदिरों में अष्टयाम दर्शनों में सर्वप्रथम प्रातः ब्रह्म महूर्त में जो भगवान् के श्रीविग्रह के दर्शन होते हैं उनको 'मंगल-आरती' दर्शन या 'मंगला के दर्शन' कहा जाता है अर्थात प्रभु का स्वरूप मंगलमय है।

स्वस्ति वाचन

वैदिक परंपरा में सब धार्मिक क्रियाओं के प्रारंभ में 'स्वस्तिवाचन' किया जाता है। ऋग्वेद पहले मंडल का 89वाँ सूक्त स्वस्तिपाठ कहलाता है, इसमें 10 ऋचाएँ हैं। यह स्वस्तिवाचन मंगलकामना का सूक्त है।

'आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु' (सब ओर से निर्विघ्न स्वयं अज्ञात, अन्य यज्ञों को प्रकट करने वाले कल्याणकारी

हमारा जीवन छोटा है। इस विराट् सृष्टि के आनंद की अनुभूति के लिए कोई विरला ही प्रयत्न करता है और जो करता है, वह इस मंगलमय आनंद में ही लीन हो जाता है। हमारी संस्कृति के उपासना-संप्रदायों में परमात्मा के हर रूप को केवल एक शब्द में सुशोभित किया है, वह है 'मंगलमय स्वरूप'–

यज्ञ (विचार तथा कर्म) हमें प्राप्त हों।

भद्रं कर्णेभिः श्रुणुयाम (कानों से कल्याणकारी बाते सुनें, नेत्रों से कल्याणमयी वस्तुओं को देखें)

यतो यतः समीहसे

यजु, 36/22

(हे परमेश्वर आप जिस रूप में हमारे कल्याण की चेष्टा करते हैं, उसी रूप में हमें भयरहित कीजिए)

यह स्वस्तिवाचन मंगलवाचन ही है। मंगल दृष्टि से मंगल सृष्टि। यहाँ 'भद्र' शब्द मंगलसूचक माना गया है। कल्याण, भद्र, शुभ, सुख, आनंद सब मंगल के पर्यायवाची हैं।

श्रीफल आदि। ये वस्तुएँ मंगलप्रतीक हैं। इनका दर्शन मात्र मंगलकारी होता है। हिंदू घर में इनका उपयोग होता है। धर्म पताका दूर से ही मंगलकारी संदेश देती है।

सर्वजनसुखाय सर्वजनहिताय दृष्टिः - मंगल दृष्टिः

हिंदू विचार, बहुजन हिताय से आगे बढ़कर सर्वजन सुखाय है, इससे भी आगे बढ़कर प्राणिमात्र के सुख की कामना हिंदू दृष्टि है।

सर्वजन सुखाय सर्वजन हिताय दृष्टिः- मंगल दृष्टिः हिंदू विचार, बहुजन हिताय से आगे बढ़कर सर्वजन सुखाय है, इससे भी आगे बढ़कर प्राणिमात्र के सुख की कामना हिंदू दृष्टि है।

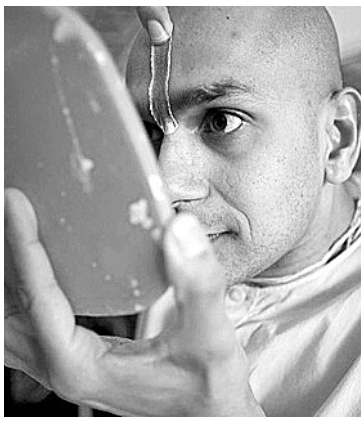

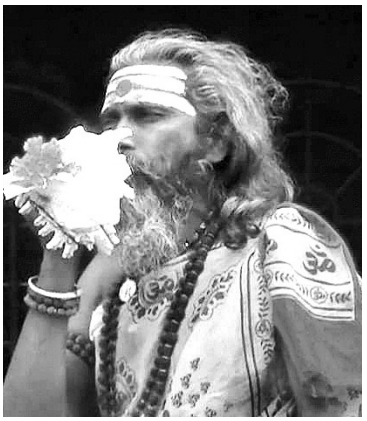

मंगल प्रतीक

हिंदू संस्कृति में प्रतीकोपासना साधना का प्रथम पाद है। इसलिए मंगल के प्रतीक कुछ चिह्न हैं, जैसे– स्वस्तिक, तिलक, शंख, पताका, गौ, कलश, त्रिशूल, मंदिर का शिखर, माला, बंदनवार (अशोक के पत्तों की) बिल्व,

सर्वे भवन्तु सुखिनो, सर्वे भवन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत्।।

–सब सुखी हों, सब नीरोग हों, सब कल्याण देखें, कोई भी दुःख का भागी न हो।

मंगलमय परमात्मा की मंगलमय सृष्टि में मंगल दृष्टियुक्त सभी सभ्य, 'विमर्श' में रत हों, तभी विश्व आतंक से, भूख से, भय से, रोग से मुक्त हो सुख शांति व मंगलमय बन सकेगा ■

लेखक भारतीय दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान हैं।

आज हम जिस आधुनिक युग के घेरे में रह रहे हैं, वहाँ की व्यवस्थाओं में धर्म शब्द का व्यवहार अकसर विचलित अर्थों में होता है, धर्म के मूलार्थ में नहीं। धर्म पर विचार करते हुए इस शब्द के मूलस्रोत और आशय की ओर जाना होगा। इसके अर्थ के विचलन से बचने के लिए आनुवादिक दोषों से मुक्त रहना होगा। यहाँ विमर्श के केंद्र में धर्म है, रिलीजन नहीं और न ही ईश्वर की आस्था पर होनेवाले संगठन, प्रबंधन, विस्तार और वर्चस्व का कोई प्रयास। कोई भ्रमशास्ता हमें धर्मभीरु न बना सके, कोई अध्यारोप हमें दिग्भ्रांत न कर सके, इसके लिए धर्मास्था का विज्ञान जानना आवश्यक है।

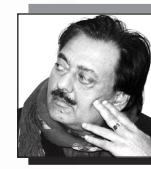

-डॉ. प्रमोदकुमार दुबे

वैदिक धर्म और आधुनिक युग

मनुष्य के अस्तित्व से धर्म का अभिन्न संबंध है, यदि हम आयु सीमा को यज्ञ का मंडप मान लें, कर्म को यज्ञ, प्रत्याशा को अग्नि, प्रयास को मंत्र और प्राप्ति को हवि तो जीवन-यज्ञ की आचार संहिता को धर्म कह सकते हैं। वस्तुतः धर्म संस्कृति, सभ्यता, राजनीति और अर्थव्यवस्था आदि के मूल में निहित है, यही कारण है कि आत्मरक्षा का संघर्ष करते हुए धर्म-संस्कृति के नेतृत्व में साहित्य और पत्रकारिता का इतिहास आगे बढ़ा और उसकी कोख से आधुनिक राजनीति का जन्म हुआ। अद्यतन वैश्विक संदर्भ लेने पर यह ज्ञात होगा कि

आधुनिक विज्ञान का भयानक चेहराः मई 1945 में अमेरिका के परमाणु बम विस्फोट से ध्वस्त हुए जापान के हिरोशिमा नगर के अवशेष।

पृथ्वी के सर्वनाश का पूर्वाभास पाते ही जागरूक लोगों ने स्टॉकहोम में आठवें दशक के बिल्कुल प्रारंभ में पृथ्वी के रक्षार्थ विश्व सम्मेलन किया। इसके अगले दशकों में पश्चिम के उत्तराधुनिक विचारकों ने आधुनिकता और आधुनिक विज्ञान की बखिया उधेड़कर रख दी।

सभ्यताओं के बीच संघर्ष की संभावना व्यक्त करनेवाले सेमुअल हटिंगटन के विवादित विचारों में प्रयुक्त सभ्यता धर्म से मुक्त नहीं है। धर्म को अफीम बताने वाले सोवियत रूस में जब कम्युनिस्ट शासन का आखिरी दौर आया, वहाँ विवेकानंद केंद्र द्वारा वेदांत आधारित व्याख्यान मालाएँ आयोजित होने लगीं।

धर्म की विविध धारणाओं में स्वीकारने और नकारने योग्य विषय हो सकते हैं किंतु, जीवन और जगत् के सभी विषयों का संबंध धर्म से आवश्यक है। भारतीय मनीषा ने तो धर्म, अर्थ और काम के त्रिवर्ग में कुल सांसारिक चेष्टाएँ समेट रखी हैं, अभ्युदय और निःश्रेयस से धर्म को परिभाषित किया है, धर्म सिर्फ आस्था का विषय नहीं है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय संसद् के प्रारंभिक वर्षों में धर्म को लेकर हुई बहसों से ज्ञात होता है कि धार्मिक आचरणों को उचित मानकर उसे स्वीकारा जा रहा था और अध्यात्म कहा जा रहा था, लेकिन धर्म को विद्वेषकारी बताते हुए धर्म या पंथ निरपेक्षता पर जोर दिया जा रहा था। जिस प्रकार धर्म शब्द को अनुवादार्थ के धुँधलके में देखा गया, सांप्रदायिक शब्द को भी कम्युनल के अर्थ में अपव्यय किया गया। सांप्रदायिक शब्द गुरुनिर्दिष्ट मार्ग के विशेष तात्पर्यों के लिए प्रयुक्त होता है। कम्युन से बनने वाले शब्द कम्युनल का अनुवाद सामुदायिक होना चाहिए, इसी कम्युन से कम्युनिस्ट शब्द की व्युत्पत्ति भी होगी।

आज हम जिस आधुनिक युग के घेरे में रह रहे हैं, वहाँ की व्यवस्थाओं में धर्म शब्द का व्यवहार अकसर विचलित अर्थों में होता है, धर्म के मूलार्थ में नहीं। धर्म

तथाकथित विकसित देशों की कपटी विवशता यह है कि वे उन्नत आर्थिक स्थिति में बनें रहें और अपने विकासी जलवे का मलवा विकासशील देशों में डंप करते रहें, आधुनिक विज्ञान और विकास की मार्केटिंग से आर्थिक लाभ उठावें, उपभोक्ता बनावें, सामाजिक परिवर्तन लाकर ऐसी पीढ़ी तैयार कर दें, जो अपने मूल-कुल, देश-समाज, परंपरा से घृणा करें।

पर विचार करते हुए इस शब्द के मूलस्त्रोत और आशय की ओर जाना होगा। इसके अर्थ के विचलन से बचने के लिए आनुवादिक दोषों से मुक्त रहना होगा। यहाँ विमर्श के केंद्र में धर्म है, रिलीजन नहीं और न ही ईश्वर की आस्था पर होनेवाले संगठन, प्रबंधन, विस्तार और वर्चस्व का कोई प्रयास। भारत के राजनीतिक इतिहास से दूर पश्चिमी मुल्कों में सेक्युलर स्टेट की संकल्पना तब पैदा हुई, जब चर्चों ने धर्मास्था की जमीन पर राजनीति की खेती शुरू की, धर्महित के आगे जनहित उपेक्षित हो गया और धर्म विवादित। इसके बाद आधुनिक युग में सेक्युलर की मान्यता स्थापित हुई। भारत का भी कोई इतिहास है, यहाँ की अपनी कोई धर्म धारणा भी है, ये बातें नया भारत बनाने का प्रयास करने वाले आधुनिक नहीं सोचते। वे पश्चिमी देशों की तर्ज पर देशी वायुमंडल में अलाप लेते पाए जाते हैं। उन्हें आधुनिक विज्ञान पर पूरा भरोसा है। वे बताते हैं कि आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से धर्म को लगातार चुनौतियाँ मिल रही हैं, अंधविश्वासों के विरुद्ध आधुनिक तर्ककर्मी परिश्रम कर रहे हैं। पर सच्चाई यह है कि कोई आधुनिक तर्ककर्मी भारत में प्रचलित शास्त्रार्थ के अखाड़े में नहीं उतरता, अवसर मिलते वह गैलीलियो, ब्रूनो, कोपरनिकस का नाम रटता हुआ उसी आधुनिक विज्ञान की ओट लेकर वार करता है, जिसका भयानक चेहरा हिरोशिमा बम विस्फोट के बाद दुनिया ने देखा बीसवीं सदी का सातवाँ दशक आते-आते आधुनिक विज्ञान की तथ्यपरक आलोचना होने लगी। उसकी सर्वनाशी खोज, आपदादायी विकास, आर्थिक विषमता और विकृत जीवनशैली की फसल देख विश्व में चिंता की लहर दौड़ गई। पृथ्वी के सर्वनाश का पूर्वाभास पाते ही जागरूक लोगों ने स्टॉकहोम में आठवें दशक के बिल्कुल प्रारंभ में पृथ्वी के रक्षार्थ विश्व सम्मेलन किया। इसके अगले दशकों में पश्चिम के उत्तराधुनिक विचारकों ने आधुनिकता और आधुनिक विज्ञान की बखिया उधेड़कर रख दी। अब तथाकथित विकसित देशों की कपटी विवशता यह है कि वे उन्नत आर्थिक स्थिति में बने रहें और अपने विकासी जलवे का मलवा विकासशील देशों में डंप करते रहें, आधुनिक विज्ञान और विकास की मार्केटिंग से आर्थिक लाभ उठावें, उपभोक्ता बनावें, सामाजिक परिवर्तन लाकर ऐसी पीढ़ी तैयार कर दें, जो अपने मूल-कुल, देश-समाज, परंपरा से घृणा करें। इस रास्ते भारत को जाहिल बनाने का वह सपना पूरी

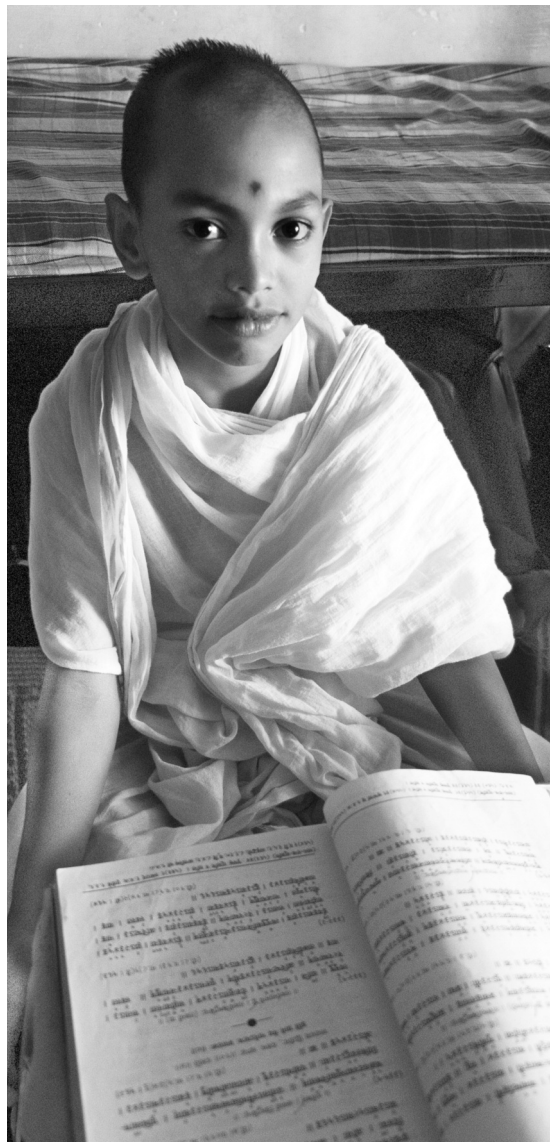

बड़ी विचित्रता यह है कि जहाँ न्यू इंडिया दुनिया में मांस, चमड़ा और सेवा क्षेत्र का बड़ा निर्यातक है, वहीं पारंपरिक भारत अध्यात्म, योग, आयुर्वेद और भक्ति-वेदांत आदि ज्ञान एवं संस्कार का बड़ा निर्यातक। जबकि अपने ही देश में ये विषय कम्युनल हैं और आधुनिक शिक्षा में घोर उपेक्षित।

तरह साकार किया जा सकता था, जिसे फ्रांसिसी पादरी अब्बे डूबोय ने देखा, जिसे साकार करने के लिए मैकाले ने काफी श्रम किया और आगे आधुनिक भारत में आधुनिक विज्ञान के हाथों आधुनिक विकास रोपकर इस कार्य में प्रगति जारी रखी गई। लेकिन खेद यह है कि इसमें फिर पेंच फँस गया है, ज्यों-ज्यों आधुनिक विकास बढ़ रहा है, जीवन बिखर रहा है, भय और संत्रास का माहौल बन रहा है, इसका विपरीत लाभ धर्म को मिलता जा रहा है।

बड़ी विचित्रता यह है कि जहाँ न्यू इंडिया दुनिया में मांस, चमड़ा और सेवा क्षेत्र का बड़ा निर्यातक है, वहीं पारंपरिक भारत अध्यात्म, योग, आयुर्वेद और भक्ति-वेदांत आदि ज्ञान एवं संस्कार का बड़ा निर्यातक, जबकि अपने ही देश में ये विषय कम्युनल हैं और आधुनिक शिक्षा में घोर उपेक्षित। ऐसी विडंबना में भी एक बार फिर युगीन धारणा के साथ धर्म नई भूमिका में उतर रहा है। अबकी बार धर्म की धारणा मात्र आस्था और भावुकता में नहीं है, जिसका लाभ 'धरम धूँधी' उठा लेते हैं, अबकी बार उसकी भूमिका मनुष्य की आत्मिक उन्नति में है, विज्ञान सम्मत आत्म अनुभूति की साधना में है, जीवन शैली के परिवर्तन में है, प्रकृतिसंगी ज्ञान-विज्ञान के संवर्धन में है। इन दिनों आधुनिक विज्ञान और धर्मबोध दोनों संघर्षरत हैं और युगानुरूप परिवर्तन के दौर से गुजर रहे हैं।

इस दौर में हमें अवश्य जानना चाहिए कि धर्म की यात्रा कहाँ से आरंभ हुई थी, इसका आप्त स्वरूप क्या है? यह जानकारी हमें धर्म-ज्ञान के सबसे पुराने स्रोत वेद से मिलेगी, उसी वेद से जो हजारों वर्ष से निंदा और स्तुति दोनों के बीच खड़ा है, जिसे अनेक दुश्चक्रों ने घेरा, अनेक हमलों ने तोड़ा, न जाने कितने दुर्दिन उसे देखने पड़े, ऐसा ही दुर्दिन अंग्रेजों के शासन काल में भी था।

भारत को आर्थिक और राजनीतिक रूप से पराधीन बना लेने के बाद अंग्रेज बौद्धिक मोर्चे पर पराधीन बनाने की लड़ाई लड़ने लगे, विजय पाने के लिए उन्होंने वह सब किया, जो वे कर सकते थे। 19वीं शताब्दी में वेदाध्ययन की ओर पश्चिमी अध्येताओं की रुचि इसी उद्देश्य से बढ़ी। कॉलेज डि फ्रांस, पेरिस में वेद के प्रोफेसर रहे यूगेन बरनूफ के शिष्यों– मैक्समूलर, राथ, गोल्डस्टकर, विलियम, म्यूर, ग्रिफिथ, बेवर, मेक्डॉनल्ड ने वेदों पर खूब हमले किए। चूँकि वेद धर्म के मूलस्रोत के रूप में प्रतिष्ठित हैं! पादरी रॉबर्ट डि नाबिली ने तो मनमाना धर्म चलाने और वैदिकों को अपदस्थ कर देने के लिए एक जाली यजुर्वेद ही बना डाला, उसकी धोखाधड़ी पकड़ी गई, विश्व भर में बड़ी निंदा हुई। वेदाध्ययन के लिए पादरी कॉलगेट और हेनरी टामस कोलब्रुक द्वारा किए गए कठिन परिश्रम का उल्लेख भी मिलता है। ये अध्येता वेद और वेदधर्म पर गहरे अध्ययन के बदौलत अपने लक्ष्य में कितना सफल हुए, इस प्रश्न में खास दम नहीं है, क्योंकि कोई प्रत्याशी धारणा पहले से जमी हुई धारणा से टक्कर लेती ही है। विरोधी को इसके दो लाभ मिलते हैं– ज्ञान की प्राप्ति और आलोचना की क्षमता। पश्चिम के आहिंडक अध्येताओं ने दोनों लाभ लिये, वे जिस ज्ञान संपदा को ग्रहण करना चाहते थे, ग्रहण कर लेते और पत्तल में छेद करने से भी बाज नहीं आते थे।

धर्म की एक झलक पाने के लिए हमें भी ऋषियों की वाणी अवश्य सुननी चाहिए। धर्म का विज्ञान कहीं है तो बस वेद में और यही विज्ञान मनुष्य के मन की लगाम थामनेवाला सारथि होकर उचित दिशा में ले जा सकता है–

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः

(कठ,1.3.9)।

वेद में देवों के यज्ञ को ही 'प्रथमधर्म' कहा गया है-

यज्ञेन यज्ञमयजंत देवास्तानि धर्माणि

धर्म की एक झलक पाने के लिए हमें भी ऋषियों की वाणी अवश्य सुननी चाहिए। धर्म का विज्ञान कहीं है तो बस वेद में और यही विज्ञान मनुष्य के मन की लगाम थामनेवाला सारथि होकर उचित दिशा में ले जा सकता है- विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः

प्रथमान्यासन् (ऋ.)।

देवों ने यज्ञ पुरुष को साधन बनाकर जो यज्ञ किया, वही यज्ञ कर्म 'प्रथमधर्म' है। क्या देवों के पहले भी कुछ था? 'देवों के पूर्व युग में असत् था, जिसका यजन सत् ने किया था'–

देवानां पूर्व्ये युगे असतः सत् अजायत (ऋ)।

असत् की पृष्ठभूमि पर ही सत् सृजित हुआ है, जैसे रात के बाद दिन। ऋग्वेद का नासदीय सूक्त असत् और सत् के पूर्व की सृष्टि-दशा का भेद खोलता है। उस नासदीय दशा से कई चरण बाद प्रथमधर्म आया। नासदीय सूक्त को हम इस प्रसंग में बस इतने के लिए याद कर रहे हैं कि उसमें सृष्टि कामना को असत् सृष्टि का अग्रज कारण कहा गया है– कामस्तदग्रे समवर्त्ततधि। देवों के सृष्टि यज्ञ के पूर्व 'सृष्टि कामना का यज्ञ है, जिसके पहले न देव थे, न पितर और न मनुष्य'–

कामो जज्ञो प्रथमो नैनं देवो न पितरो मर्त्यः

(अथर्व.)।

'ब्रह्म सत्ता के तेज में असत् तपा, जैसे लुहार लोहे को आग में भाँथी से तपाता है, उससे ज्योतिरूप देव उत्पन्न हुए'–

ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मार इवाधमत्

(ऋ.10.72.2)।

वेद के विज्ञानभाष्यकार पं. मधुसूदन ओझा ने ऋषिप्राण को ही असत् कहा है, जिससे सत् सृष्टि की पृष्ठभूमि

बनती है। अतः वेद ने प्रथम सृष्टि यज्ञ का श्रेय देवों को दिया और इसी यज्ञ कर्म को प्रथमधर्म कहा। आइए, देखते हैं कि देवयज्ञ कैसा है और उससे संबंधित प्रथमधर्म कैसा? इस 'यज्ञ की वेदी सात परिधियों से बनी है। इसमें इक्कीस समिधाएँ हैं। देवों ने इस यज्ञ को तान रखा है। इसमें पुरुष पशु बँधा हुआ है, पुरुष की हवि से देवगण जिस यज्ञ को फैला रहे हैं, उसका घृत है वसंत ऋतु, ईंधन ग्रीष्म ऋतु और हवि शरद ऋतु'–

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं शुम्।।
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्हवि।।
(यजुर्वेद, 31.14/15)।

इस यज्ञ का 'होता अग्नि, अध्वर्यु वायु, उद्गाता सूर्य, ब्रह्मा चंद्रमा और सदस्य वर्षा है'–

तमाहरत् येनायजत तस्याग्निर्होताऽऽसीत्
वायुरध्वर्युः।
सूर्य उद्गाता चन्द्रमा ब्रह्मा पर्जन्यः सदस्यः।।
(गोपथ ब्राह्मण।, 1.13)।

स्पष्ट है कि देव यज्ञ प्रत्यक्ष सृष्टि ही है। देव हैं द्युलोक की चेतन रश्मियाँ, देश-काल की बुनावट, आकार रहित चैतन्य ने इससे आकार ग्रहण किया, सात परिधियों, तीन गुणा सात बराबर इक्कीस समिधाओं में, पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्युलोक सहित सात ग्रहों में, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित सहित सात छंदों में। हम देखते हैं कि देवयज्ञ में एक सुनिश्चित क्रम है। उनके सृजित अविकृत विश्व में त्रिसप्तात्मक ऋत है–

ये त्रिसप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः
(अथर्व.)।

त्रिसप्त में प्रथमधर्म का प्राकृतिक विज्ञान है। इसी से ब्रह्मबिंदु विश्ववृत्त में विस्तार लेता है। वेद की अनेक ऋचाओं में इस मूलसूत्र का प्रयोग हुआ है, जैसे– 'कूएँ में गिरे हुए त्रित ने देवों को पुकारा, ऊपर निकालो'

आज न आचार है, न विचार, न कर्म यज्ञ की धारणा है, न ही कोई यज्ञ। जिस किसी कार्य से अधिक से अधिक आर्थिक लाभ हो, उसके पीछे लोग दौड़ लगा रहे हैं। पता नहीं किसके पढ़ाने पर लोग रट रहें हैं– जंग में, मुहब्बत में, सियासत में हर चीज जायज है। इसका नतीजा यह है कि अविश्वास का अँधेरा बढ़ता जा रहा है।

त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हवत ऊतये।

(ऋ,1.105.17)।

यह बिंदु के बृहण का वर्णन है। कुआँ वृत्त है, वृत्त का तीसरा भाग त्रित प्रचलित शब्द में व्यास उसमें गिर पड़ा है, वह परिधि के भीतर अपने विस्तार की चेष्टा कर रहा है। कौन नहीं आत्म विस्तार के लिए छटपटाता है। यदि व्यास सात है तो उसके तिगुना इक्कीस से कुछ अधिक परिधि की रेखीय लंबाई होती है। रेखागणित का यह स्थापित सूत्र भाषिक व्यवहार में देखकर सहज ही समझा जा सकता है कि वेदवाणी में प्रकृति के नियम हैं। देवयज्ञ से सर्वत्र व्याप्त सृजनशील चेतना ही प्रथमधर्म है, यह मानुषी चेतना में भी सक्रिय है। सृष्टि, स्थिति और लय का विराट् त्रिक मानुषी व्यवहार के धर्म, अर्थ, काम के त्रिवर्ग में और प्रत्याशा, प्रयास, प्राप्ति के मनोगत त्रिक में समान रूप से निहित है। यज्ञ का त्रिक देवों के प्रथमधर्म अर्थात् सृष्टि का अनुसरण करता है, यज्ञ के नियमों से किया गया प्रत्येक कर्म यज्ञ हो जाता है।

ऐसा नहीं है कि कर्मकांड के मंत्रों तक वैदिक प्रज्ञान और कर्म सीमित हैं। भारत के शिल्पकर्मी भी इस ज्ञान के उत्तराधिकार से अपने-अपने कर्मों को पूजा की तरह करते रहे हैं। याज्ञिक रेखागणित के आधार पर लकड़ी, लोहा, सोना, मिट्टी के काम होते रहे हैं। नगरों, गाँवों और वनों में वेदी से संबंधित स्वस्तिक, बिंदु, रेखा, त्रिकोण, वर्ग, पंचकोण, षट्कोण, अष्टकोण और वृत्त आधारित कलाएँ रची जाती रही हैं, मंदिर, भवन, किले बनते रहे हैं। हजारों वर्ष से आज तक वेदी रचना की परंपरा लोकजीवन में व्याप्त है। शास्त्रीय संगीत, नृत्य, अभिनय में भी वेद के ज्ञान का उपयोग प्रचलित है। बिंदु के वृत्त बनने पर व्यास से परिधि तिगुनी होनी चाहिए, त्रिसप्त सूत्र यही कहता है, लेकिन नहीं, परिधि में कुछ वृद्धि हो जाती है। क्योंकि यह यज्ञ है, यज्ञ वृद्धिप्रद है, इसी में त्रिधा त्रिक होने के कारण नित्य नवता है–

नवो नवो भवति नाममानः। (ऋ.,10.85.19)

सात गुणे तीन की चर्चा के बाद सात जोड़ तीन बराबर दस की बात होनी चाहिए। इसी से दस संख्यक यज्ञपुरुष का स्वरूप बनता है।

वैदिक यज्ञसंस्था के केंद्र में दस संख्यक यज्ञपुरुष स्थापित है और यही धर्म की नाभि है-**'पुरुषो वै यज्ञः'**। पुरुष का अर्थ है– जो सबको पूरित करता है, जो पिंड और ब्रह्मांड के पुर में व्याप्त है–(छांदोग्य. 3.12.6)। इस पुरुष में तीनों काल, तीनों लिंग और तीनों आवेश हैं। यह शून्य है, पूर्ण है, केवल एक और यही एक सब कुछ है। इसी के भीतर नौ तक की संख्याएँ हैं। यह दस है, सौ है, हजार है और दस के क्रम में ही बहुत-बहुत। दस माह के अंतर्गत होनेवाले गर्भाग्नि के यज्ञ में मनुष्य के जन्म की जैविक क्रियाओं का क्रम भी अन्न से विकसित होने वाले यज्ञपुरुष के समान ही है। देह की आयु बनकर यही पुरुष हम सब में समाया हुआ है

'यो वै प्राणः स आयुः। सोऽयं पुरुषेऽन्तः प्रविष्टो दशधा विहितः

(शत.ब्रा., 5.2.310)।

काया में पाँच ज्ञानेंद्रियाँ और पाँच कर्मेंद्रियाँ कुल दसों इंद्रियों से यही सक्रिय है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त का पुरुष हजारों सिर, हजारों आँखें और हजारों पाँव वाला है, जो भूमि को चारों ओर से घेरकर खड़ा है, जिसके दस अंगुल भाग घेरे के भीतर हैं और शेष भाग घेरे के बाहर, जिसके एक भाग में पंचतत्त्व– भूमि, जल, अग्नि, वायु

हजारों वर्ष से आज तक वेदी रचना की परंपरा लोकजीवन में व्याप्त है। शास्त्रीय संगीत, नृत्य, अभिनय में भी वेद के ज्ञान का उपयोग प्रचलित है।

और आकाश है, शेष तीन भाग द्युलोक में प्रकाश रूप है, वही बीते दिनों में था, भविष्य में रहेगा और वर्तमान में है, जहाँ कहीं जो भी है, वह सबकुछ वही पुरुष है।' यजुर्वेद का कथन है–'वह एक ही सभी दिशाओं में बाहर-भीतर व्याप्त है, वह सबसे पहले जनमा और वही भविष्य में जनमता रहेगा'–

एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः
पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः। (32.4)।

अथर्ववेद भी इस कथन से सहमत है– 'एक वही पिता है, वही पुत्र, वही बड़ा है वही छोटा, वही सबसे पहले जनमा और गर्भ में भी स्थित है'-

उतैषां पिता उत वा पुत्र एषां
उतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः।
एको ह देवो मनसि प्रतिष्ठः
प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः।। (अथर्व,10.8.28)

वेद के ये कथन सर्वात्मा में एकत्व का प्रतिपादन करते हैं और इससे एकात्म विश्वदृष्टि बनती है। वेद की दृष्टि में पूरा ब्रह्मांड एक काया है जिसका सिर द्युलोक, प्राण-अपान वायु, नाभि अंतरिक्ष, कान दिशाएँ और पैर भूमि है-

नाभ्याऽआसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्।।
(यजु.)

मनुष्य देह भी ब्रह्मांड से अभिन्न है। ऋषि वाणी है– 'सूर्य मेरी आँख है, वायु मेरे प्राण, अंतरिक्ष मेरी आत्मा और पृथ्वी मेरा शरीर। मैं द्यावा और पृथ्वी के बीच सुरक्षित हूँ'–

सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम्..... (अथर्व, 5.9.7)।

यज्ञपुरुष अपनी सर्वत्र व्याप्ति के कारण विष्णु और दस संख्यक होने के कारण विराट् कहा जाता है। इन्हीं दस तक की संख्याओं से आज की दिग्भ्रमित आधुनिक सभ्यता का भी कारोबार चल रहा है, लेकिन इस आदि संख्या स्रोत के प्रति वह कृतज्ञ नहीं है।

त्रिसप्त सूत्र के सात गुणे तीन और सात जोड़ तीन का विज्ञान देखने के बाद सात घटाव तीन बराबर चार अर्थात् कृत की चर्चा होनी चाहिए। कृत भी दस संख्यक यज्ञपुरुष विष्णु है– वेद की वेदी है। छांदोग्योपनिषद् (4.3.8) बतलाता है कि कृत चौपड़ की बिसात है। चार में तीन, दो और एक समाया हुआ है। इन चारों का योग दस होता है। कृत ही जगत् है, चौपड़ की विसात है, प्रवृत्ति और निवृत्ति के मध्य का सम, व्यवस्था का मूलाधार है, प्राण की वेदी है, यही चतुर्युग है काल की वेदी, सौ वर्ष की आयु के चार भागों की जीवन वेदी। चतुर्वर्ण और पुरुषार्थ चतुष्ट्य इन सबका आधार दस संख्यक यज्ञपुरुष है। इसीलिए वृत्तांत का अर्थ है महाप्रलय। पुरुषसूक्त के पुरुष की देह के चार अंगों में मुख ब्राह्मण है, बाहु क्षत्रिय, जंघा वैश्य और पाँव शूद्र। यह चतुर्वर्ण समाज में भी उपयोग हुआ। पतंजलि महाभाष्य बताता है कि 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र शब्दों को सामुदायिक गुणों के लिए उपयोग किया जाता है'–

सर्वे एते शब्दाः गुणसमुदायेषु वर्तन्ते ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्र इति।

भारतीय समाज संरचना पर अब्बे डूबोय ने तमिलनाडु

भारतीय समाज संरचना पर अब्बे डूबोय ने तमिलनाडु के गाँवों में तीस वर्ष रहकर अध्ययन किया– यह जानने के लिए कि विदेशी आक्रांताओं की लगातार लूट और शासन शोषण के बावजूद भारत में बार-बार आर्थिक संपन्नता कहाँ से आती है? उसने पाया कि यहाँ के समाज में कार्य विभाजन है, कोई भी दूसरे के कार्यक्षेत्र का अतिक्रमण नहीं करता, किसी की वृत्ति का हरण वध करने के समान अपराध माना जाता है।

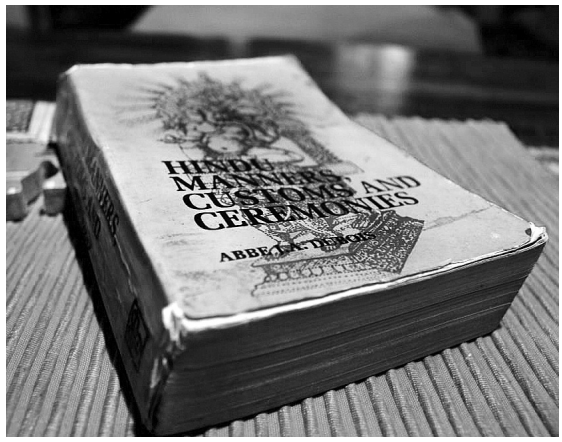

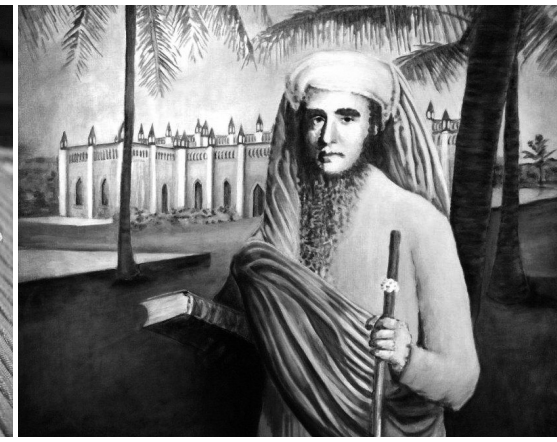

भारतीय समाज को उसकी सांस्कृतिक जड़ों से काटकर उसे जाहिल बनाने का सपना देखने वाले फ्रांसिसी पादरी अब्बे डूबोय और भारतीय परंपराओं की मनमानी व्याख्या करने वाली उनकी पुस्तक।

के गाँवों में तीस वर्ष रहकर अध्ययन किया यह जानने के लिए कि विदेशी आक्रांताओं की लगातार लूट और शासन शोषण के बावजूद भारत में बार-बार आर्थिक संपन्नता कहाँ से आती है? उसने पाया कि यहाँ के समाज में कार्य

चतुर्वर्णी प्रवृत्तियों में एक ही चेतना विविध रूप में कार्य करती है। स्पष्ट है कि वेद याज्ञिक अभिप्राय से चतुर्वर्ण का उपयोग करता है, वर्ण श्रेष्ठता-नेष्ठता से सामाजिक असमानता पैदा करने के लिए नहीं।

विभाजन है, कोई भी दूसरे के कार्यक्षेत्र का अतिक्रमण नहीं करता, किसी की वृत्ति का हरण वध करने के समान अपराध माना जाता है। क्योंकि प्रत्येक वृत्ति में जीवन यापन का साधन होता है। आजीविका नष्ट होने पर जीना कठिन हो जाता है। डूबोय ने उस व्यवस्था को ध्वस्त करने का परामर्श देते हुए पुस्तक लिखी, उसे ऑक्सफोर्ड से प्रकाशित करवाया और इसके बाद वृत्ति उच्छेद से वध करने का सिलसिला शुरू हुआ। आगे के दिनों में औद्योगिक क्रांति से दुनिया ही बदल गई है। आज न आचार है, न विचार, न कर्म यज्ञ की धारणा है, न ही कोई यज्ञ। जिस किसी कार्य से अधिक से अधिक आर्थिक लाभ हो, उसके पीछे लोग दौड़ लगा रहे हैं। पता नहीं किसके पढ़ाने पर लोग रट रहें हैं– जंग में, मुहब्बत में, सियासत में हर चीज जायज है। इसका नतीजा यह है कि अविश्वास का अँधेरा बढ़ता जा रहा है, कपट और छल के लिए लोग एक-दूसरे को खोज रहे हैं। पर भारत में हर चीज जायज नहीं होती, साधन की शुद्धता-अशुद्धता पर कर्मफल निर्भर माना जाता है। इसीलिए आचार पर इतना जोर दिया गया, युद्ध हो या प्रेम अथवा राजसत्ता, सभी अपने धर्म से नियंत्रित रहें, यही उचित माना जाता है। हाँ, स्वेच्छाचारी शासन की शक्ति सामान्य मानुषी कार्यों का परिणाम बदल सकती है, अच्छे काम का बुरा परिणाम क्यों नहीं हो सकता, यदि राजसत्ता चाहे हो तो।

प्रश्न उठता है कि क्या वेद ने चतुर्वर्ण की व्यवस्था शूद्र को नीचे रखने के लिए दे रखी है? जिसके चलते शूद्र वर्ण हजारों वर्ष से सताया गया। वैदिक यज्ञ की दृष्टि में शूद्र क्या है, यह जानने के लिए ऐतरेय ब्राह्मण के आठवीं पंचिका, प्रथम अध्याय में दिए हुए राजसूय यज्ञ

प्रत्येक मनुष्य में यज्ञपुरुष निहित है, सभी देह चतुर्वर्ण हैं। अपने-अपने कर्म क्षेत्रों में सभी चतुर्वर्ण का निर्वाह अघोषित रूप से करते हैं। एक ही व्यक्ति कभी ब्राह्मण, कभी क्षत्रिय, कभी वैश्य तो कभी शूद्र हो सकता है। चतुर्वर्ण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसी में अभ्युदय का चतुर्वर्ग और अर्थायाम है। जिसे उन्नति करनी हो, उसे रूढ़ धारणाओं से मुक्त होकर चतुर्वर्ण के कृत का चिंतन और व्यवहार करना चाहिए।

के स्तोम और शस्त्र का उल्लेख देखेंगे। इसमें तीन स्तोम ब्रह्म, पंद्रह स्तोम क्षत्र, सत्रह स्तोम वैश्य और इक्कीस स्तोम शूद्र कहा गया है। ब्रह्म तेज है, क्षत्र वीर्य, वैश्य संतान और शूद्र प्रतिष्ठा। यह स्तोम का वर्गीकरण है, किसी व्यक्ति समूह का नहीं। स्तोम क्या है?

'प्राण ही स्तोम है'- **प्राणो वै स्तोमा** (श.ब्रा. 8.4.1.3), 'स्तोम ही परम स्वर्ग लोक है'- **स्तोमः वै परमाः स्वर्गलोकाः** (ऐ.ब्रा. 4.18)।

सामान्य शब्दों में कहें तो स्तुति वचनों को स्तोम कहा जाता है। इसका अभिप्राय निश्चय ही याज्ञिक है। इससे ज्ञात होता है कि ब्रह्म, क्षत्र, विश् और शूद्र याज्ञिक उपक्रमों की शब्दावली है। चतुर्वर्ण में किसी को छोटा और किसी को बड़ा बताने का काम वेद नहीं करता, वेद एक ही परिमाण रहित ब्रह्मबिंदु के विश्ववृत्त में विस्तार के चार चरणों को चतुर्वर्ण मानता है। मत्स्यपुराण का एक कथन है–

ओंकार वक्त्रा गायत्री त्वमिति ब्रह्मवादिभिः।
आक्रान्तिकारुर्जिताकारा राजभिश्च महाभुजैः।।
त्वं भरति विशां शूद्रैः शैविति पूजिता।....

इस कथन से ज्ञात होता है कि चतुर्वर्णी प्रवृत्तियों में एक ही चेतना विविध रूप में कार्य करती है। स्पष्ट है कि वेद याज्ञिक अभिप्राय से चतुर्वर्ण का उपयोग करता है, वर्ण श्रेष्ठता-नेष्ठता से सामाजिक असमानता पैदा करने के लिए नहीं। यज्ञपुरुष के चरण भाग में लक्ष्मी विराजमान हैं। प्रत्येक मनुष्य में यज्ञपुरुष निहित है, सभी देह चतुर्वर्ण हैं। अपने-अपने कर्म क्षेत्रों में सभी चतुर्वर्ण का निर्वाह अघोषित रूप से करते हैं। एक ही व्यक्ति कभी ब्राह्मण, कभी क्षत्रिय, कभी वैश्य तो कभी शूद्र हो सकता है। चतुर्वर्ण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसी में अभ्युदय का चतुर्वर्ग और अर्थायाम है। जिसे उन्नति करनी हो, उसे रूढ़ धारणाओं से मुक्त होकर चतुर्वर्ण के कृत का चिंतन और व्यवहार करना चाहिए। सामान्य शब्दों में कहें तो मनोरथ, उद्यम, अर्जन और प्रतिष्ठा इन्हीं चारों चेष्टाओं को यज्ञसंस्था ने कृत कहा, जगत् को कृताश्रयी बताया और कृतांत को सर्वनाश। यज्ञपुरुष, यज्ञवेदी और यज्ञक्रिया में त्रिसप्त के जोड़, घटाव और गुणा का गणित है। वैदिक त्रिसप्तसूत्र के चार आयाम हैं।

यह नहीं भूलना चाहिए कि 770 ईसवी में ब्रह्मस्फोट सिद्धांत नामक खगोलीय गणित ग्रंथ के बगदाद में हुए अनुवाद से पहली बार भारतीय अंकगणित परदेस पहुँचा, हिंदसाँ के नाम से ख्यात हुआ, मिस्र से आगे बढ़ 10वीं-11वीं सदी में यूरोप गया, तब दुनिया की जिज्ञासा अंकविद्या में हुई और आधुनिक युग के निर्माताओं ने भी वेद के अंक क्रमों पर दृष्टिपात किया, उन्हें अपने ढंग से पल्लवित भी किया। यज्ञ के सजीव विज्ञान में अंकविद्या का प्रयोग किन-किन उद्देश्यों से किया जाता है, कृतांक से क्या लाभ होता है, यह ज्ञान अभी भी वेदज्ञों के पास ही है। आधुनिक विज्ञान के मुहब्बत में दीवाने हुए लोग यदि वेदमाता का महत्त्व बिसार देंगे तो कभी भी ज्ञान के अग्रज नहीं बन सकते। कोई भ्रमशास्ता हमें धर्मभीरु न बना सके, कोई अध्यारोप हमें दिग्भ्रांत न कर सके, इसके लिए धर्मास्था का विज्ञान जानना आवश्यक है। ■

लेखक एन.सी.ई.आर.टी. में वरिष्ठ प्रोफेसर हैं।

-आनंद आदीश

विज्ञान के प्रति सम्यक् दृष्टिकोण के अभाव में जिस गति से मनुष्य समाज में आस्था, विश्वास, कर्मण्यता, सौंदर्यानुभूति, सहजता आदि स्थायी जीवन-मूल्यों का ह्रास हो रहा है; मानव की आशा का एकमात्र केंद्र वह साहित्य और साहित्यकार हो सकता है, जो वैज्ञानिक दृष्टि का धनी बनकर जन-जन में आशा का संचार कर सके; न कि वह जो त्रस्त मानव को निराशा, अकर्मण्यता, आक्रोश, अविवेक, मृत्यु आदि की अंधी गुफाओं में धकेलने के उपकरणों का आयात करे।

भारतीय साहित्य की कालजयी अवधारणा

जर्मनी के महान् दार्शनिक नीत्से ने एक बार कहा था, 'ईश्वर मर गया है और यह एक बड़ी घटना है।' कुछ दशक पूर्व भारतीय साहित्य परिषद् की ओर से 'पाठकीय रुचि का संकट' विषय पर डॉ. प्रभाकर माचवे की अध्यक्षता में नई दिल्ली में आयोजित गोष्ठी में बहुत से साहित्यकारों के विचार सुनकर अनायास ही मेरे मानस-पटल पर प्रश्न उभरा था—क्या साहित्यकार भी मर गया है और यदि हाँ, तो क्या यह बड़ी दुर्घटना नहीं? उस गोष्ठी में उपस्थित अधिकांश लेखकों की तीव्रतम वेदना यह थी कि जिनका साहित्य से लेना-देना नहीं, उनकी रचनाएँ बड़ी संख्या में छप-बिक रही हैं। बस में, रेलगाड़ी में, घर में, फुटपाथों

पर सब जगह उनकी कृतियों की चर्चा है। यदि कोई नहीं पढ़ा जाता या नहीं जाना जाता तो वह है साहित्यकार, जो सही अर्थों में साहित्यिक है। 1000 प्रतियों का संस्करण तीन वर्ष में भी समाप्त नहीं हो पाता, कई सौ प्रतियाँ जामा मसजिद के कबाड़ी बाजार की शोभा बढ़ाती फिरती हैं। इस स्थिति के लिए किसी ने समाज को दोषी ठहराया तो किसी ने सरकार को, किसी ने प्रकाशक को तो किसी ने पूँजीपति को। कुल मिलाकर ऐसा प्रतीत हुआ कि बीसवीं सदी का तुलसीदास (?) मेले में हाथ जोड़े गिड़गिड़ा रहा है, 'भाई' मेरे द्वारा रचित महाकाव्य की दो चौपाई तो सुनते जाओ। मैं ऐसा-वैसा तुकबंदी करने वाला नहीं, शुद्ध साहित्यिक प्रतिभा का धनी हूँ। सुन लो भैया!' डॉ. कमल किशोर गोयनका, रामकुमार भ्रमर, मनहर चौहान, दीनानाथ मिश्र, डॉ. रमानाथ त्रिपाठी, डॉ. सत्यपाल चुघ, डॉ. देवेंद्र आर्य जैसे कुछ साहित्यकारों ने जब स्वयं साहित्यकारों द्वारा आत्मालोचन की बात कही तो अधिकांश ने अनसुना कर दिया। कुछ ने मौन समर्थन भर दिया, मुखरित नहीं किया या कहने का साहस नहीं किया।

युग बोध के नाम पर अपनी रचनाओं में जो लोग मृत्यु, संत्रास, उन्मुक्त-काम आदि की बेशुमार भरमार करते रहे हैं, वे अधिकांशतः अस्वाभाविक नाटकीयता के शिकार हैं।

विज्ञान ने जिस तीव्र गति से उन्नति की है और नित-नवीन खोजों द्वारा जिस वेग से उसने पृथ्वी ही नहीं अंतरिक्ष के भूगोल को मुट्ठी में भींचकर समय और दूरी को निचोड़ा है तथा राजनीति जिस कदर हमारी दिनचर्या बन गई है, उसके परिणामस्वरूप 'लघु-मानव' की उत्पत्ति का स्वाभाविक परिणाम साहित्यकार की घटती हुई साख के रूप में हमारे सामने उपस्थित है। स्वार्थ का पुतला यह आधुनिक मशीनी-मानव चेतन को नकार कर जड़ की पूजा कर रहा है। सर्वस्व विजय करने की महत्त्वाकांक्षा तथा विश्वास लिए यह लघु-मानव यदि साहित्यकार को भी अपना पिछलग्गू माने तो कौन बड़ा आश्चर्य है ? परंतु स्थिति की विडंबना तो यह है कि स्वयं साहित्यकार इस चुनौती से आँखें मूँदकर, भयग्रस्त हो, इसी लघु-मानव की दासता स्वीकार करने में अपने को धन्य मानने लगा है। साहित्यकार तनिक आत्मालोचन तो करे कि कहीं लघु-मानव की समस्त सीमाएँ उसके स्वयं के अंदर भी तो प्रवेश नहीं कर गई हैं। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि राम का गुणगान करते-करते तुलसी राममय हो गए और कृष्ण के गीत गाते-गाते मीरा कृष्णमय। काम, संत्रास, भूख आदि को जीने का नाटक करते-करते यदि आज का साहित्यकार स्वयं लघु-मानव में परिणित हो गया हो तो क्या आश्चर्य!

एक प्रतिष्ठित पत्र के साहित्यिक समीक्षक ने लगभग पचास साहित्यकारों की गोष्ठी में बड़े गर्व के साथ घोषणा की कि 30 वर्ष से अधिक आयु का व्यक्ति

विज्ञान ने जिस तीव्र गति से उन्नति की है और नित-नवीन खोजों द्वारा जिस वेग से उसने पृथ्वी ही नहीं, अंतरिक्ष के भूगोल को मुट्ठी में भींचकर समय और दूरी को निचोड़ा है तथा राजनीति जिस कदर हमारी दिनचर्या बन गई है, उसके परिणामस्वरूप 'लघु-मानव' की उत्पत्ति का स्वाभाविक परिणाम साहित्यकार की घटती हुई साख के रूप में हमारे सामने उपस्थित है।

मृत्यु का संगीत, संत्रास के श्लोक और इनसानी हैवानियत के हवाले क्षणिक उद्वेग भले ही पैदा करते हों, परंतु वे स्थायी अनास्था के बीज बोते हैं और रचनाकार की कायरता और नपुंसकता को उजागर करते हैं।

साहित्यकार नहीं हो सकता। ये सज्जन अपने आपको युवा पीढ़ी का प्रतिनिधि कवि मानते हैं। उपस्थित साहित्यकार दंग रह गए। वहाँ उपस्थित सभी की आयु, इन सज्जन की भी तीस के पार ही थी। इसी प्रकार एक और साहित्यकार थे। नोबल पुरस्कार प्राप्ति की ललक में अमेरिका और यूरोपीय देशों के चक्कर प्रायः लगाया करते थे। कुछ समय पूर्व उन्होंने फतवा सुना दिया कि न 'कामायनी' कोई महाकाव्य है और न प्रसाद कवि।

इन और इन जैसे महानुभावों के क्या मापदंड हैं, यह तो ये ही जानें, परंतु शुद्ध कवियों की श्रेणी में ये स्वयं के अतिरिक्त किसी को स्वीकार नहीं करते। रैंबू, मलार्मे, आस्कर वाइल्ड, क्रोचे आदि के चिंतन-मनन को अपनी मौलिकता के नाम से भारतीय जनमानस के सामने प्रस्तुत करते समय अपनी अति-बौद्धिकता का प्रदर्शन ही मात्र इनका उद्देश्य रहा है। मुझे लगता है, फ्रांस के मेधावी कवि रैंबू की इस उक्ति को-ज्ञान ने मेरी कोई सहायता नहीं की, क्लासिक ग्रंथों ने मुझे कुछ नहीं दिया, पढ़कर ही उन्होंने 'कामायनी' के कवित्व को नकारने का साहस बटोरा होगा। परंतु अपने से आयु में दस वर्ष बड़े कवि वर्लेन के सहवासी के रूप में जीवन प्रारंभ कर अपनी मान्यताओं की खातिर जिन विपदाओं और वास्तविकताओं को रैंबू ने झेला और जिया है, क्या उसकी छाया भी इन तथाकथित शुद्ध साहित्यकारों पर पड़ी है? किसने उसका शतांश भी लिखा है, जो रैंबू ने सोलह और

बीस वर्ष की आयु के बीच लिख दिया था? किसकी बाँह में उसी के मित्र ने गोली मारी है? दुरूहता, आत्माभिव्यक्ति, अर्थहीनता आदि को कोई श्रेष्ठ कविता के गुण मानता है तो माने, परंतु वह यह स्वीकार क्यों नहीं करता कि इनकी मान्यताओं में विश्वास न करने वाला भी साहित्यकार हो सकता है।

प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, अकविता के पुरोधाओं ने साहित्य के नाम पर जिन आंदोलनों को जन्म दिया है, वे साहित्यिक कम, राजनीतिक अधिक हैं। युग-बोध के नाम पर अपनी रचनाओं में जो लोग मृत्यु, संत्रास, उन्मुक्त-काम आदि की बेशुमार भरमार करते रहे हैं, वे अधिकांश में अस्वाभाविक नाटकीयता के शिकार हैं।

दिगंबर या भूखी पीढ़ी का शायद ही कोई कवि या लेखक उस जीवन को जी रहा है। थोड़ा सा लिखकर, उसमें भी अधिकांश नकल कर, प्रसिद्धि के शिखर चूमने को लालायित साहित्यकारों का यह वर्ग प्रकाशक और आलोचक साथ लेकर मैदान में कूदता है। छोटी-छोटी अनियमित पत्रिकाएँ घर-घर से निकल रही हैं। प्रत्येक के अपने साहित्य-सिद्धांत हैं, टोले हैं और अपने आपके अतिरिक्त इनकी दृष्टि में न कोई लेखक है, न कवि। खेतों, खलिहानों, मजदूरों, भिखमंगों, असहायों आदि की व्यथा को अभिव्यक्ति देनेवाले भी स्वाँग मात्र करते प्रतीत होते हैं; क्योंकि उस जीवन को इन्होंने भोगा तो है ही नहीं, इसके विपरीत विलासिता का जीवन जिया है, जी रहे हैं। कॉफीहाउस और होटलों की रंगीनियाँ इनका वास्तविक जीवन है। कथनी और करनी के बीच बढ़ती दरार ही इनकी सबसे बड़ी कमाई है। तो भी इन साहित्यकारों में से कुछ की उपलब्धियों को नकारा नहीं जा सकता। मैं उनकी बात कर रहा हूँ, जिन्होंने एक नई जीवन-दृष्टि खोजने का प्रयत्न किया है, कुछ नव प्रयोग किए हैं और साहित्य के भंडार को अवश्य ही कुछ स्थायी महत्त्व की सामग्री दी है। बहुत सारा दूध बिलोया है तो निश्चय ही कुछ मक्खन भी ऊपर तैर आया है।

कवि लेविस के शब्दों में कहना हो तो 'सभी आस्थाओं से टूटकर या तटस्थ होकर न तो कोई लिख सकता है, न जी सकता है।'

परंतु प्रश्न फिर वहीं अटका है- सामाजिक और साहित्यिक के बिगड़ते समीकरण को ठीक कैसे किया जा सकता है? विशेषकर भारत के संदर्भ में साहित्यकार की पुनर्स्थापना की क्या संभावनाएँ और शर्तें हैं? मेरे विचार में देर-सवेर एक ऐसे साहित्य को इस धरती पर जन्म लेना होगा, जो विश्व आंदोलनों का अध्ययन-मनन करेगा, परंतु उसकी मूल जीवन-दृष्टि भारतीय होगी, जिसमे इसकी मिट्टी की सुवास होगी।

हमारी दृष्टि में आधुनिक साहित्य का सबसे बड़ा कलंक साहित्यकार की आस्था-विहीन स्थिति है। आस्था के अभाव में भी कभी कुछ हुआ है क्या! हम वैज्ञानिक दृष्टिकोण की दुहाई देते हैं, परंतु हमने क्या कभी इस बात पर भी विचार किया है कि आज तक की सभी वैज्ञानिक उपलब्धियाँ आस्थाजन्य श्रम और बुद्धि का ही परिणाम हैं। जिन साहित्यकारों ने वॉलदेयर, मलार्मे, रैंबू आदि-साहित्य में अंतर्मुखी यात्रा के आंदोलनों का श्रीगणेश किया तथा जिनको प्रकृतिवादियों (जो नैतिकता को कोई महत्त्व न देकर मनुष्य के अंतश्चेतन की प्रवृत्तियों, जो न केवल अदमनीय दिखाई देती थीं, अपितु अंधी और कलुषित भी थीं, को ही अपने अध्ययन का विषय मानते थे) का भी समर्थन अनायास ही प्राप्त हो गया, वे भी किसी-न-किसी आस्था से तो आबद्ध थे। यह बात दूसरी है कि उनकी आस्था ने उन्हें जीवन से निराश कर मृत्यु-मुख जैसी निराशा की गहन गुफा में धकेल दिया। जर्मन कवि होल्डरलान के भाग्य में आए जीवन के अंतिम छत्तीस वर्ष पागलपन का अभिशाप लिये, फ्रांसीसी कवि जरार-द-नैविल के हिस्से में आई आत्महत्या, चित्रकार वानगाग की जिंदगी भर की मेहनत के प्रसाद

'संस्कृत का साहित्य हमें बताता है कि विपत्ति और कष्ट आते हैं और चले जाते हैं, समृद्धि और धनाढ्यता फैन बुदबुदा के समान काल-स्रोत में उत्पन्न होती है और विलीन हो जाती है। साम्राज्य और धर्म-राज्य उठते हैं और गिर जाते हैं, परंतु मनुष्य फिर भी बचा रहता है।

के रूप में मिला पागलपन और तज्जनित मृत्यु, नीत्से ने कमाई अर्ध-विक्षिप्तता और वॉलदेयर ने बटोरी दरिद्रता तथा रोग शय्या। उनकी जीवन-दृष्टि और जीवन-शैली का इन विभीषिकाओं से कोई आपसी संबंध था क्या?

आस्था धर्म में हो या कर्म में, संस्कृति में हो या प्रकृति में, निवृत्ति में हो या प्रवृत्ति में, यह विषय विवाद का हो सकता है। परंतु मनुष्य की जिजीविषा या अजेय क्षमता या अपराजेयता में आस्था रखकर, संभवतया इन विवादों को सुलझाकर या बनाए रखकर भी साहित्यकार की स्रष्टा की स्थिति को बनाए रखा जा सकता है। मृत्यु का संगीत, संत्रास के श्लोक और इनसानी हैवानियत के हवाले क्षणिक उद्वेग भले ही पैदा करते हों, परंतु वे स्थायी अनास्था के बीज बोते हैं और रचनाकार की कायरता तथा नपुंसकता को उजागर करते हैं। कैसा आश्चर्य है कि वे साहित्यकार हम से अपनी रचनाएँ पढ़ने की अपेक्षा करते हैं, जो 'पाप स्वाभाविक और पुण्य कृत्रिम है' या 'कर्म से दूर, शुद्ध भावना के शिखर पर रहो' या 'कर्म जीवन नहीं है, वह शक्ति के अपव्यय का एक साधन मात्र है, जो आदमी को कमजोर बनाता है और नैतिकता दिमागी कमजोरी का नाम है' जैसे बेतुके प्रलाप करते हैं, इनके पास हमें देने के लिए क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में ये सज्जन यह भी कह सकते हैं कि हम कहाँ कहते हैं कि कुछ देने के लिए हम बाध्य हैं। ठीक है, परंतु इनकी रचनाएँ पढ़कर अपनी रही सही आस्था भी गिरवी रखने का शौक भला किसे होगा? इसका उत्तर इनके पास नहीं है।

आज जब विज्ञान की विजयपताका हमारी दुनिया और इस दुनिया के परे भी फहराने लगी है तथा विज्ञान के प्रति सम्यक् दृष्टिकोण के अभाव में जिस गति से मनुष्य समाज में आस्था, विश्वास, कर्मण्यता, सौंदर्यानुभूति, सहजता आदि स्थायी जीवन-मूल्यों का ह्रास हो रहा है; मानव की आशा का एकमात्र केंद्र वह साहित्य और साहित्यकार हो सकता है, जो वैज्ञानिक दृष्टि का धनी बनकर जन-जन में आशा का संचार कर सके; न कि वह जो त्रस्त मानव को निराशा, अकर्मण्यता, आक्रोश, अविवेक, मृत्यु आदि की अंधी गुफाओं में धकलने के उपकरणों का आयात करे।

आधुनिक बोध से अतिग्रस्त व्यक्ति अपनी संपूर्ण ईमानदारी के बावजूद भी किस प्रकार अनायास ही आत्मविश्वास खो सकता है, इसका सबसे बड़ा उदाहरण जर्मन विद्वान् आस्वाल्ड स्पैंगलर में देखने को मिलता है। सन् 1918 में प्रकाशित उनकी पुस्तक 'पश्चिम का पतन' (डिक्लाइन ऑफ द वेस्ट) एक उस ईमानदार इनसान की तड़प है, जो संस्कृति के ह्रास से आहत हो परिस्थितियों का वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण करता है और वस्तुपरक दृष्टि के सहारे आधुनिक मानव समाज के संपूर्ण खोखलेपन को उद्घाटित करने में समर्थ होता है। स्पैंगलर का यह मत कितना सही है कि संस्कृति का

जिस प्रकार खिलना तथा वातावरण को सुवासित करना पुष्प का स्वाभाविक गुण है, उसी प्रकार सत्य, शिव और सुंदर की अभिवृद्धि अनजाने ही करते जाना साहित्यकार का स्वाभाविक गुण क्यों न हो!

विकास उसकी आध्यात्मिक शक्ति के कारण होता है। जब संस्कृति अपने चरम विकास पर आ पहुँचती है तो उसकी आध्यात्मिक प्रगति समाप्त हो जाती है। उसके बाद वह जमने लगती है और बर्फ बन जाती है। प्रत्येक संस्कृति का पर्यवसान-सभ्यता-मृत्यु का घाट है। संस्कृति कृषि संस्कार से जन्म लेती है और उसी से बढ़ती भी है। सभ्यता महानगरों के संस्कारों को कहते हैं। जब महानगर बनते हैं, व्यक्ति चतुर अधिक हो जाता है और ईमानदार कम।

साहित्यकार और वैज्ञानिक में 3 और 6 का संबंध नहीं है, अर्थात् एक-दूसरे से विमुख नहीं हैं, अपितु एक दूसरे के पूरक हैं। जिस बात की कल्पना नहीं की जा सकती, उसे परीक्षण से भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। आकाश में उड़ने की कल्पना ने ही वायुयान को जन्म दिया और वायुयान के आविष्कार ने कल्पना को नए पर। आस्था के सहारे कल्पनाएँ साकार की जाती हैं और साकार की हुई कल्पनाएँ नूतन कल्पनाओं की संबल बन जाती हैं। आस्था-विहीन होना भी कोई स्थिति है, इसे हम नहीं समझते। कवि लेविस के शब्दों में कहना हो तो 'सभी आस्थाओं से टूटकर या तटस्थ होकर न तो कोई लिख सकता है, न जी सकता है।'

आवश्यकता ऐसे साहित्य की है, जिसकी खोज आचार्य हजारी प्रसाद द्विवदी ने संस्कृत साहित्य में की है- 'संस्कृत का साहित्य हमें बताता है कि विपत्ति और कष्ट आते हैं और चले जाते हैं, समृद्धि और धनाढ्यता फैन बुदबुद के समान काल-स्रोत में उत्पन्न होती है और विलीन हो जाती है। साम्राज्य और धर्म-राज्य उठते हैं और गिर जाते हैं, परंतु मनुष्य फिर भी बचा रहता है। शताब्दियों की यात्रा से वह क्लांत नहीं होता। चलना और आगे बढ़ना उसका स्वाभाविक धर्म है। इतिहास-विधाता की अज्ञात योजना का ठीक-ठीक स्वरूप हम नहीं जानते, पर संस्कृत का साहित्य उच्च स्वर में पुकार-कर कहता है कि वह योजना मंगल की ओर अग्रसर हो रही है। युद्ध और विग्रह केवल उस जय-यात्रा में क्षणिक विक्षोभ भले ही पैदा कर दें, परंतु उस मंगल-यात्रा को रोक नहीं सकते।'

आस्था भावात्मक संज्ञा होने के कारण आत्मा के सान्निध्य में निवास करती है और स्वयं में न सदाचारी है और न ही व्यभिचारी। परंतु हमारी आस्था की प्रेरणा से किए गए कर्म का परिणाम अच्छा अथवा बुरा हो सकता है। तीव्रानुभूति की प्रसव-पीड़ा से मन में जो भावबीज अंकुरित होता है, वह श्रेयस्कर या हानिकर कुछ भी हो सकता है। सृजनहार की आस्था के पूरक होने पर ये भावबीज उसकी रचनाओं में स्थान पाते हैं और विरोधी होने पर त्याग दिए जाते हैं। आस्था के पूरक भाव लेखक को आत्मानंद प्रदान करते हैं तो स्थायी

महत्त्व के हो सकते हैं। परंतु कई बार ये भाव साहित्यकार के अहं को संतुष्ट करते हैं और वह उसी को आत्मानंद समझ लेता है। वैसे सच्चा आत्मानंद सार्वजनीन होता है और समाज के आनंद से भिन्न नहीं होता। इसी कारण स्वान्तः सुखाय लिखने वाला भी अंततोगत्वा समाज के सुख के लिए ही लिख रहा होता है।

साहित्यकार स्वभावतः समाजसुधारक, प्रचारक या समाज के पीछे आँख मूँदकर चलनेवाला प्राणी नहीं है, न ही उसे होना चाहिए, परंतु उसके हृदय में जो आग सुलगती है, उसकी तपन और तेजस्विता समाज की जय-यात्रा के पथ को अनायास ही आलोकित क्यों न करे! जिस प्रकार खिलना तथा वातावरण को सुवासित करना पुष्प का स्वाभाविक गुण है, उसी प्रकार सत्य, शिव और सुंदर की अभिवृद्धि अनजाने ही करते जाना साहित्यकार का स्वाभाविक गुण क्यों न हो! जो लोग युग-बोध के नाम पर चौंकाने वाली रचनाएँ लिखते हैं और छपवाते हैं, उन्हें समाज-बोध की आवश्यकता का अनुभव कब होगा! तभी तो समाज भी साहित्यकार को कल्पना के विलास-लोक में विचरण करने वाला, जीवन की वास्तविकताओं से अपरिचित अथवा हारा हुआ बौद्धिक पशु मात्र समझने लगा है। कथनी-करनी में जितनी बड़ी खाई आधुनिक साहित्यकार के यहाँ पाल-पोसकर बड़ी की गई है, उतनी किसी युग में नहीं हुई। इसे विदा किए बिना साहित्यकार और समाज के बिगड़े हुए समीकरण को ठीक नहीं किया जा सकता। आखिर साहित्यकार भी तो सामाजिक प्राणी है। समाज रसातल को जाएगा तो ये महाशय क्या बच पाएँगे!

साहित्यकार को यह कहने की आवश्यकता नहीं होती कि समाज के लिए क्या करणीय है और क्या त्याज्य। उसकी रचनाओं का स्वाभाविक परिणाम और प्रभाव ही ऐसा होता है कि समाज के संस्कारों में कुछ बातें उसमें जुड़ जाती हैं और कुछ अनुपयोगी संस्कार अलग हो जाते हैं। तुलसी को कहीं जनसभाओं में जाकर गृहस्थ मर्यादाओं पर व्याख्यान नहीं देने पड़े, परंतु समाज को जो ग्रहण करना था, कर लिया। 'रामचरितमानस' अनायास ही समाज का हृदय-हार बन गया। अपनी आस्था के साथ ईमानदार रहकर उन्होंने सामाजिक प्रतिबद्धता का अन्यतम उदाहरण प्रस्तुत किया है। हम यह न भूलें कि तुलसी और उनकी कृति युग की माँग भी थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि समाज और सृजनहार एक-दूसरे को प्रभावित करने एवं एक-दूसरे से प्रतिबद्ध होने के लिए विधि द्वारा बाध्य हैं।

साहित्यकार को यह कहने की आवश्यकता नहीं होती की समाज के लिए क्या करणीय है और क्या त्याज्य। उसकी रचनाओं का स्वाभाविक परिणाम और प्रभाव ही ऐसा होता है कि समाज के संस्कारों में कुछ बातें उसमें जुड़ जाती हैं और कुछ अनुपयोगी संस्कार अलग हो जाते हैं। तुलसी को कहीं जनसभाओं में जाकर गृहस्थ मर्यादाओं पर व्याख्यान नहीं देने पड़े, परंतु समाज को जो ग्रहण करना था, कर लिया। 'रामचरितमानस' अनायास ही समाज का हृदय-हार बन गया।

भारतीय संदर्भ में इतिहास-दृष्टि का प्रश्न भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसे पश्चिम के अंधानुकरण की धुंध का परिणाम मात्र न कहकर उनकी कूटनीतिक सफलता का ही परिणाम कहना चाहिए कि अपने इतिहास के संबंध में बहुत से भ्रम हमारे मन में घर कर गए हैं। इसी के साथ-साथ तथाकथित धर्मनिरपेक्षता के अतिरंजित सम्मोहन में भी हमने इतिहास को विद्रूप कर दिया है। साहित्यकार भी किन्हीं कारणों से इससे अप्रभावित नहीं रहा है। उदाहरण के लिए, भारतीय संस्कृति के मानदंडों पर निर्लज्ज प्रहार कर किसी मिली-जुली संस्कृति के

वैदिक, पौराणिक, शैव, शाक्त, जैन, बौद्ध, सिक्ख, संत साहित्य से विमुख होकर इस देश में साहित्य-सृजन की कल्पना नहीं की जा सकती। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति आदि का अध्ययन किए बिना इस देश के जनमानस को भला कोई साहित्यकार कैसे छू सकता है!

निर्माण करने का दंभ भरनेवाले साहित्यकार भी काफी बड़ी संख्या में दिखाई देने लगे हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम राम अथवा साध्वी सीता के चरित्र पर भी लांछन लगाने वाले अपने को साहित्यकार कहकर इस देश में स्वतंत्र विचरण करते हैं। नितांत संयमित भाषा में यही कहा जाएगा कि इनकी दृष्टि इतिहास सम्मत नहीं है, क्योंकि किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार नहीं है कि वह किसी राष्ट्र या समाज की परंपरा को अपवित्र करे।

जिसने अपने पूर्व साहित्यकारों की कृतियों को आत्मसात् कर लिया है, वही ऋण चुकाने में भी सक्षम हो सकता है। ऐसा ही साहित्यकार इतिहास सम्मत दृष्टि का धनी बनकर स्वयं भी अतीत को प्रभावित करता है, अर्थात् उस समाज की सांस्कृतिक मर्यादाओं के अंतर्गत बीते कल की युगानुरूप व्याख्या करता है; अनर्गल प्रलाप नहीं करता। वैदिक, पौराणिक, शैव, शाक्त, जैन, बौद्ध, सिक्ख, संत साहित्य से विमुख होकर इस देश में साहित्य-सृजन की कल्पना नहीं की जा सकती। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति आदि का अध्ययन किए बिना इस देश के जनमानस को भला कोई साहित्यकार कैसे छू सकता है।

इसका अर्थ न लगाया जाए कि हम पुरातनवादी होकर लकीर पीटते रहना चाहते हैं। इसके बिल्कुल विपरीत हम तो नित नवीन प्रयोगों (फैशनों के नहीं) का सहर्ष स्वागत करते हैं, उन्हें एक शुभ लक्षण मानते हैं, परंतु इन प्रयोगों के अमर्यादित पक्ष को हम स्वीकार नहीं करते।

इतिहास-सम्मत दृष्टि कहते समय हमारा यही भाव है कि अतीत की गरिमा को आत्मसात् कर समाज के जीवन मूल्यों का आदर करते हुए यदि नव प्रयोग किए जाएँ तो वह विधायक कार्य होगा और निश्चय ही मानव जीवन के अविरल प्रवाह में हम भी कुछ श्रेयस्कर योगदान कर पाएँगे।

साहित्यकार विरोध और विध्वंस के लिए नहीं, निर्माण के लिए पैदा हुआ करता है। यह उसका जन्मसिद्ध दायित्व है। काट-छाँट भी करता है तो उस शिल्पी की तरह, जो पत्थर को तराशकर मूर्ति का निर्माण करता है। हमारी मान्यता है कि साहित्यकार की रचनाओं में सत्यं, शिवं और सुंदरम् के बीच संतुलन होना चाहिए। सत्य से धर्म, शिव से अर्थ और सुंदर से काम के समानुपातिक निर्वाह से मोक्ष की प्राप्ति होती है और साहित्यकार सही अर्थ में स्रष्टा बनता है। उसके कार्य की चरम परिणति भी इसी में है। आचार्य भामह के शब्दों में-

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
प्रीतिं करोति कीर्तिं च साधुकाव्यनिबन्धनम्।।

लेखक प्रसिद्ध साहित्यकार/पत्रकार व अखिल भारतीय साहित्य परिषद् के पूर्व राष्ट्रीय महामंत्री हैं।

उत्कृष्ट शिक्षा पद्धति अच्छे चिकित्सक, अभियंता, सूचना प्रौद्योगिकी विशेषज्ञ या प्रशासनिक अधिकारी ही नहीं बनाती, उन्हें अच्छे मानव व आदर्श नागरिक भी बनाती है। आज के प्रदूषित व ह्रासमय परिवेश में मूल्याधृत शिक्षा प्रदान करना परम कर्तव्य होना चाहिए।

भारतीय शिक्षा पद्धति

दशा और दिशा

डॉ. राजवीर शर्मा

अनेक वर्षों से भारत में यह बहस और विवाद का विषय रहा है कि भारत में शिक्षा की नीति -रीति और उद्देश्य क्या हो? एक तरफ मार्क्सवादी एवं वे विचारक, जो शिक्षा के आधुनिकीकरण के नाम पर पश्चिम का अंधानुकरण करना चाहते हैं और दूसरी ओर वे राष्ट्रवादी विचारक हैं जो शिक्षा को सर्वव्यापी, सर्वस्पर्शी, राष्ट्रवादी और मानवतावादी बनाने के साथ आज के युग के अनुकूल बनाना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि शिक्षा में युगानुकूल और समयानुकूल परिवर्तन होने चाहिएँ, लेकिन ये सुधार एक ऐसे समाज की रचना और विकास में भी उपयोगी होने चाहिएँ, जो न्याय और समानता को बढ़ावा दें और अपने देश के प्रति गौरव एवं गर्व की भावना को संवर्धित करें। मार्क्सवादियों एवं मैकाले समर्थकों की सोच सदैव ही पश्चिम के चश्मों से निर्धारित हुई है, जिसने भारत में अनुशासनहीनता, स्वार्थ, स्वेच्छाचारिता, मानवीय मूल्यों

राष्ट्रवादी विचारकों का मानना है कि भारत की शिक्षा की नीति और रीति इस प्रकार की हो, जो भौतिक ज्ञान व वैज्ञानिक ज्ञान को तो सर्वोत्कृष्ट बनाए ही, साथ में समग्र के विचार को भी जनमाए, भरपाए और उत्कृष्टता लाए।

के क्षरण और समग्र के स्थान पर स्व को संपोषित किया है। इस सबका परिणाम यह हुआ है कि भारत के अच्छे शिक्षित लोगों में देश के प्रति प्रेम का अभाव, अपनी संस्कृति एवं ऐतिहासिक विरासत के प्रति हीन या नकारात्मक सोच, कर्तव्यपरायणता पर अधिकारवाद का प्रभुत्व आदि अनेक विनाशकारी प्रवृत्तियों का बलवती होना आदि इस बात का संकेत है कि भारतीय शिक्षा पद्धति ने अच्छे इंजीनियर, डॉक्टर, सूचना-प्रौद्योगिकी विशेषज्ञ, वैज्ञानिक एवं प्रबंध विशेषज्ञ तो बनाए, लेकिन अच्छे नागरिक व संवेदनशील मानव इस शैक्षणिक प्रक्रिया में कहीं खो गए। राष्ट्रवाद और मानववाद आधुनिकवाद के बोझ तले दम तोड़ गया।

अतः राष्ट्रवादी विचारकों का मानना है कि भारत की शिक्षा की नीति और रीति इस प्रकार की हो, जो भौतिक ज्ञान व वैज्ञानिक ज्ञान को तो सर्वोत्कृष्ट बनाए ही, साथ में समग्र के विचार को भी जनमाए, भरपाए और उत्कृष्टता लाए।

विवाद से ऊपर उठकर संवाद की आवश्यकता है। कुछ मार्क्सवादी इतिहासकारों और शिक्षाविदों का यह धर्म बन गया है कि वे शिक्षा के भारतीयकरण की हर चर्चा और पहल को भगवाकरण और हिंदुत्ववाद का नाम देकर धर्मनिरपेक्षता की विरोधी बता देते हैं और आरोप लगाते हैं कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अपने इशारों पर भारत की शिक्षा नीति को प्रभावित कर देश की सामाजिक समरसता और सांप्रदायिक सौहार्द को तोड़ना चाहता है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है, इस प्रकार के विचार अपनी वैचारिक दुकान को सुरक्षित रखने का एक मिथ्या और भ्रामक प्रचार है या फिर ये विचारक अपनी सीमित सोच और समझ के दायरे से बाहर ही नहीं आना चाहते। उन्हें यह पढ़ना और समझना होगा कि भगवा रंग शुद्धता और त्याग का परिचायक है। क्या यह वांछित नहीं है कि भारत की शिक्षा इन मूल्यों को पुनः स्थापित करे? क्या यह

आवश्यक नहीं है कि भारतीय संविधान का अक्षरशः एवं मूल्यात्मक रूप से मूलतः पालन हो। भारत का संविधान जहाँ एक ओर 'स्व' की रक्षा की बात करता है, व्यक्ति के निजी अधिकारों की रक्षा की गारंटी देता है; वहीं वह 'समग्र' के हितों की गारंटी भी देता है। अनुच्छेद 19 इस बात की पुष्टि करता है कि व्यक्तिगत हितों की रक्षा करना राज्य का कर्तव्य और जिम्मेदारी है, परंतु सार्वजनिक हितों की रक्षा के लिए व्यक्तिगत हितों को सीमित करने की आवश्यकता होगी तो राज्य ऐसा कदम उठाने के लिए स्वतंत्र होगा। मौलिक अधिकार एवं राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों के बीच सामंजस्य पूर्ण संबंधों पर शासन के सभी तीन अंगों (विधानपालिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका) का बल किसी-न-किसी रूप में देखने को मिलता है।

नारी के सम्मान और सशक्तीकरण की संकल्पना एवं अवधारणा पश्चिम की तुलना में भारत की भूमि पर जन्मित, पोषित और संवर्धित हुई है। प्राचीन काल से लेकर (जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवों का निवास होता है) आधुनिक भारत तक भारतीय विचारकों ने इस विचार का समर्थन किया है। मध्यकालीन युग इस विचार और परंपरा का अपवाद कहा जा सकता है, जब नारी को 'एक वस्तु' की तरह देखा गया और शासकों की लड़ाई में भूमि को जीतने के साथ ही रानियों व दासियों को भी जीत का हिस्सा बनाकर जश्न मनाया जाने लगा। यहाँ से ही शायद नारी के सम्मान और शक्तियों और अधिकारों का ह्रास प्रारंभ हुआ। क्या यह सब खोज का विषय नहीं होना चाहिए? यदि मार्क्सवादी तथा मैकालेवादी ऐसा करना भगवाकरण मानते हैं, तो वे न केवल महिला समाज के साथ अन्याय कर रहे हैं, बल्कि समाज में किंवदंतियों को भी बढ़ावा दे रहे हैं। इसलिए उनका आग्रह तो 'अपने विचार' के हित में इतिहास की निरपेक्ष व्याख्याओं एवं राष्ट्रीय पहचान को भी उतना ही महत्त्व देते हैं। अंग्रेजी माध्यम ही यदि ज्ञान अर्जित और संवर्धित करने का केवल मात्र एक रास्ता होता तो यह देश तो आज अज्ञान, अविश्वास, पिछड़ेपन और असभ्य समाज का एक अति उत्कृष्ट उदाहरण होता। लेकिन ऐसा हुआ क्या? तो फिर भारत को अपनी मातृभाषा में ज्ञान के आदान-प्रदान को विकास विरोधी और गैर-आधुनिक कहकर ऐसा करने से रोका जाता है।

वास्तव में देखा जाए तो अंग्रेजी माध्यम में शिक्षा समाज में कई प्रकार के असंतुलन एवं विसंगतियों को सहारा और

अंग्रेजी माध्यम में शिक्षा समाज में कई प्रकार के असंतुलन एवं विसंगतियों को सहारा और बढ़ावा दे रही है। इससे शिक्षा के क्षेत्र में शहर को गाँव से अलग कर दिया, अमीर एवं गरीब के बीच की खाई और गहरी एवं चौड़ी कर दी, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को जनमानस की पहुँच से बाहर कर दिया।

बढ़ावा दे रही है। इससे शिक्षा के क्षेत्र में शहर को गाँव से अलग कर दिया, अमीर एवं गरीब के बीच की खाई और गहरी एवं चौड़ी कर दी, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को जनमानस की पहुँच से बाहर कर दिया। समाज को श्रेष्ठ और शिक्षित गँवार के बीच बाँट दिया। लाखों-करोड़ों बच्चों की प्रतिभाओं को कुंठित कर सृजनात्मक योगदान करने से रोक दिया। शिक्षा यदि मातृभाषा में हो तो यह समाज में न केवल एकता, समरसता, सहजता, समानता जैसे गुणों का निर्माण और विकास करेगी, अपितु यह उन बच्चों को भी बौद्धिक रूप से सक्षम बनने, फलने-फूलने और बौद्धिक क्षमताओं का भरपूर विकास करने का अवसर प्रदान करेगी, जो देश के दूरदराज के क्षेत्रों में, गाँवों में रहते हैं, क्योंकि फिर शिक्षक और शोधकर्ता भी अंग्रेजी के स्थान पर हिंदी में चिंतन, मनन, व्याख्या और शोध

आधुनिक शिक्षा के नाम पर मैकाले ने एक ऐसी शिक्षा नीति और पद्धति की नींव रखी, जो उसी के अनुसार भारत में एक ऐसे शिक्षित वर्ग को जन्म दे, जो शासक और शासित के बीच कड़ी का काम करे, जिसका रंग और रक्त तो हिंदुस्तानी हो परंतु जो विचारों, सोच, बुद्धि तथा नैतिकताओं से पूर्णतः अंग्रेज हो।

करेंगे और ज्ञान का वितरण तथा विस्तार एवं प्रसार हिंदी में होगा तो इसका लाभ समाज के वंचित और गरीब, लेकिन प्रतिभाशाली बच्चों को भी मिलेगा।

आधुनिक शिक्षा के नाम पर मैकाले ने एक ऐसी शिक्षा-नीति और पद्धति की नींव रखी, जो उसी के अनुसार भारत में एक ऐसे शिक्षित वर्ग को जन्म दे, जो शासक और शासित के बीच कड़ी का काम करे, जिसका रंग और रक्त तो हिंदुस्तानी हो, परंतु जो विचारों, सोच, बुद्धि तथा नैतिकताओं से पूर्णतः अंग्रेज हो। क्या आज भी इसी प्रकार की शिक्षा पद्धति को सुधारने, सँवारने और स्थिति -संगत बनाने पर गंभीर विचार एवं सहमति बनाने की आवश्यकता नहीं है? क्या यह सोचने की आवश्यकता नहीं है कि हमें अब औपनिवेशिक सोच के दायरे तथा प्रभावों को पुनः विश्लेषित करना चाहिए? वैसे तो इस विषय और बहस के बहुत से आयाम हैं, लेकिन तर्क की दृष्टि से भाषा (शिक्षा का माध्यम क्या हो), मूल्याधारित शिक्षा, योग का शिक्षा में स्थान को ही लीजिए।

भाषा के संदर्भ में दो बातें ली जा सकती हैं– एक, शिक्षा किस माध्यम से दी जाए जब भी यह बात की जाती है कि शिक्षा का माध्यम हिंदी होना चाहिए तो तुरंत मैकालेवादी पुरानी सोच हावी हो जाती है और इस माँग को भगवावादी, हिंदूवादी, दकियानूसी, विकास विरोधी और न जाने क्या-क्या कहकर नकार दिया जाता है। कोई थोड़ी देर रुककर यह गंभीरता से सोचने की जरूरत नहीं समझता कि दुनिया के बहुत से विकसित देश अपनी मातृभाषा में ही विषयों का अध्ययन कर विकसित हुए हैं। क्या चीन, जापान, स्पेन, जर्मनी तथा ऐसे ही अनेक देश किसी भी रूप में दकियानूसी या विकास की दृष्टि से पिछड़े कहे जा सकते हैं? जहाँ वे विश्व के आर्थिक एवं शासनिक विकास में अग्रणी हैं, वहीं पर वे अपनी भाषा एवं संस्कृति का संरक्षण कर राष्ट्रीय गौरव का संवर्धन कर रहे हैं। इसी प्रकार से संस्कृत के अध्ययन की बात ले लीजिए, इसकी चर्चा करते ही फिर कुछ लोग बहुत बेचैन हो जाते हैं और इसे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के माथे मढ़कर, अनावश्यक कहकर छोड़ देते हैं। लेकिन उनका

संस्कृत वास्तव में कई अन्य भाषाओं की न केवल जननी है, बल्कि संस्कृत के ज्ञान से भारत बहुत से क्षेत्रों में न केवल आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ सकता है अपितु सक्षम, प्रभावी, उत्तरदायी और संवेदनशील प्रशासनिक विचारधारा एवं पद्धति की पुनः स्थापना भी कर सकता है।

ऐसा कहना इस बात का प्रयास है कि संस्कृत का ज्ञान उन्हें नहीं है, तभी वे ऐसी बातें करते हैं। संस्कृत वास्तव में बहुत सी अन्य भाषाओं की न केवल जननी है, बल्कि संस्कृत के ज्ञान से भारत बहुत से क्षेत्रों में न केवल आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ सकता है, अपितु सक्षम, प्रभावी, उत्तरदायी और संवेदनशील प्रशासनिक विचारधारा एवं पद्धति की पुनः स्थापना भी कर सकता है।

हम सब पश्चिम के राजनीतिक सिद्धांतों का अध्ययन तो बड़ी तत्परता से करते हैं, परंतु कौटिल्य, पाणिनि जैसे विचारकों के मूल ग्रंथों को नहीं पढ़ पाते, क्योंकि वे मूलतः संस्कृत में हैं। वेद, गीता, महाभारत, रामायण एवं अन्य ग्रंथों में समाहित ज्ञान के अनंत भंडार की सार्थक विवेचना, आलोचना, विश्लेषण, अन्वेषण तब तक नहीं कर सकते, जब तक कि हमें संस्कृत का ज्ञान न हो। आयुर्वेद में निहित स्वस्थ जीवन जीने का ज्ञान हमें तभी पूर्ण रूप से मिल सकता है जबकि हमें संस्कृत का ज्ञान हो। हम भारतीय ओषधि विज्ञान का संपूर्ण विकास कर चिकित्सा के क्षेत्र में नए कीर्तिमान स्थापित कर सकते हैं। इसी प्रकार संस्कृत में रचित ग्रंथों का मूल रूप में अध्ययन कर भारत सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक क्षेत्र में भी नयी पहल कर सकता है और उस ज्ञान को वैश्वीकरण के साथ जोड़ सकता है। इस प्रक्रिया द्वारा शिक्षा का भगवाकरण नहीं वरन् ज्ञान का नवीनीकरण होगा और हम बाहरी ज्ञान के उपभोक्ता या प्राप्तिकर्ता नहीं होंगे, अपितु शिक्षा से जुड़े शिक्षकों एवं विद्यार्थियों में मौलिक चिंतन का विकास होगा। उनमें विषय का मनन करने की आदत का विकास होगा और जो विचार अद्यतन युग एवं परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिक हैं, उनको अंगीकार कर सकेंगे तथा अनुपयुक्त विचारों को छोड़ सकेंगे।

मानवीय मूल्यों को हिंदू धर्म के साथ जोड़ना यह बताता है कि हिंदूकरण के आलोचक भी हिंदू धर्म के इस सकारात्मक सामाजिक पहलू को स्वीकारते हैं।

लगभग ऐसे ही विवाद मूल्य आधारित शिक्षा प्रदान करने से भी जुड़े हैं। यद्यपि हर नागरिक यह मानता है कि मूल्यों के अभाव या पतन के कारण ही भारतीय समाज, अर्थव्यवस्था तथा राजनीति में अनेक घातक प्रवृत्तियों ने जन्म लिया है, लेकिन जैसे ही मानव-मूल्यों को शिक्षा का भाग बनाने की बात कोई करता है तो तुरंत कुछ बुद्धिजीवी तथा नेता इसे शिक्षा का भगवाकरण या हिंदूकरण करने का प्रयास बताने लगते हैं। पहले तो मानवीय मूल्यों को हिंदू धर्म के साथ जोड़ना यह बताता है कि हिंदूकरण के आलोचक भी हिंदू धर्म के इस सकारात्मक सामाजिक पहलू को स्वीकारते हैं, लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मानवीय मूल्य जिस धर्म में और ग्रंथ में भी हों, पढ़ाने के लिए लिये जा सकते हैं। ईमानदारी, प्रेम, दया, निष्ठा, राष्ट्रवाद, लिंग-समानता तथा आदर एवं अन्य अनेक ऐसे ही मूल्यों की स्थापना शिक्षा के माध्यम से दृढता के साथ करनी चाहिए। ■

लेखक वरिष्ठ शिक्षाविद् हैं।

प्रो. (डॉ.) गिरीश चंद्र माहेश्वरी

रामचरित मानस में नेतृत्व की विचारधारा

नेतृत्व व प्रबंध कौशल मानव के विशिष्ट गुणों में गिना जाता है। आज विश्व के विद्यालयों में नेतृत्व व प्रबंधन के गुर सिखाए जाते हैं। अनेक पाठ्यक्रम व असंख्य पुस्तकें इस हेतु निर्धारित हैं। इस कौशल की आवश्यकता पुरातन काल में भी होती थी। गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में एक निपुण व सुयोग्य प्रबंधक व नेता के गुणों की व्याख्या की है। प्रस्तुत आलेख में उसी को रेखांकित किया गया है।

नेतृत्व-कृतित्व, व्यवहार शैली एवं सिद्धांतों की भरपूर विवेचना पाश्चात्य प्रबंध दर्शन में विद्वानों ने आर्थिक एवं तार्किक मानव के संदर्भ में की है। प्रतिस्पर्धात्मक परिस्थितियों में किस प्रकार बाजार में विजयी होने के लिए व्यूह-नीतियों का प्रतिपादन आधुनिक प्रबंध के मनीषियों के चिंतन एवं विचार-विमर्श का विषय रहा है, जिनके द्वारा क्षणिक समाधान प्रदान करने के लिए नेतृत्व की विभिन्न विशेषताओं का प्रतिपादन

आधुनिक सभ्यता का सबसे मूल्यवान अवयव 'मनुष्य' है। अतः मानवीय विकास एवं नेतृत्व से अधिक महत्त्वपूर्ण कुछ और हो ही नहीं सकता है। यदि किसी संगठन (सामाजिक, व्यावसायिक अथवा राजनीतिक) में नेतृत्व का अभाव है, तो वह केवल मनुष्य, मशीन और अमूर्त भवनों का ढेर बनकर रह जाता है।

किया है, साथ ही असफल होते हुए निगमों की चर्चा भी की गई है, परंतु धारणीयता पर प्रश्न चिह्न आज भी लगे हुए हैं, क्योंकि उनमें स्थायित्व एवं शाश्वतता का अभाव है।

नेतृत्व की व्याख्या भारतीय चिंतन का विषय रहा है, विशेषकर वेदांतिक भाष्य, महाभारत, पुराण एवं रामायण, किंतु गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस इनमें विशिष्ट है, क्योंकि अनेक पुराण, वेद और शास्त्रों से सम्मत तथा जो कुछ अन्यत्र उपलब्ध है, उसका सुरुचि, सुगंध तथा अनुरागी रस से परिपूर्ण सहजगम्य जनभाषा में रामकथा को अपने अंतःकरण के सुख के लिए गोस्वामी जी ने लिखा है। जो अंतःकरण को सुख प्रदान करे, उससे बड़ा और कुछ नहीं हो सकता है। वर्तमान लेख में रामचरितमानस के कुछ विचारों का नेतृत्व, नेता एवं अनुयायी तथा उसकी कार्यशैली का धारणीयता के संदर्भ में विवेचन किया गया है।

आधुनिक सभ्यता का सबसे मूल्यवान अवयव 'मनुष्य' है। अतः मानवीय विकास एवं नेतृत्व से अधिक महत्त्वपूर्ण कुछ और हो ही नहीं सकता है। यदि किसी संगठन (सामाजिक, व्यावसायिक अथवा राजनीतिक) में नेतृत्व का अभाव है, तो वह केवल मनुष्य, मशीन और अमूर्त भवनों का ढेर बनकर रह जाता है। नेतृत्व एक ऐसी मानवीय विशेषता है, जो मनुष्य की दृष्टि को व्यापक बना देती है, मनुष्य के निष्पादन के नित्य नए एवं ऊँचे मापदंड स्थापित करता है तथा मनुष्य के व्यक्तित्व को सामान्य सीमाओं से भी आगे विकसित कर नई सीमाओं का निर्धारण करती है। वास्तव में प्रत्येक मानव समूह को, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए, अपने सदस्य के कार्यकलापों के पथप्रदर्शन, अभिप्रेरणा और निर्देशन के लिए एक प्रभावशाली नेता की आवश्यकता होती है। वास्तव में नेतृत्व ही है, जो संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए, इच्छा को तत्परता तथा उपलब्धियों में परिवर्तित करने का सफल एवं निपुण प्रयोग करता है। एक कुशल नेतृत्व ही लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में आनेवाले अवरोधों एवं कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करके संगठन को प्रगति के मार्ग पर ले जाता है। अतः कोई भी उपक्रम चाहे कितना ही विकसित एवं सुसज्जित क्यों न हो, नेतृत्व को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता और न ही अधिशासियों को आवश्यक प्रेरणा दे सकता है।

मानवीय प्रयासों का अंतिम ध्येय अनवरत आनंद की अनुभूति करना है और जीवन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए हम प्रयासों (कर्मों) का निवेश करते रहते हैं। कर्म की परिणति उसके फल में होती है। सामान्यतः हम इसे निवेश-परिसंस्करण-उत्पाद प्रक्रिया के रूप में जानते हैं और निवेश एवं परिसंस्करण में आनेवाले परिवर्तन उत्पाद को प्रभावित करते हैं। इस दृष्टि से यदि हम अपने जीवन पर दृष्टिपात करें तो हमें बड़ा विस्मयकारी चित्र दृष्टिगोचर होता है। एक साथ विद्यार्थियों के वर्ग में निवेश (प्राध्यापक) स्थिर है। अध्यापक, संगठक, पुस्तकालय आदि सभी एक जैसे हैं, लेकिन विद्यार्थियों का परीक्षा परिणाम भिन्न होता है। क्योंकि उसका प्रसंस्करण मानसिक रूप से विद्यार्थियों ने अलग-अलग तरह से किया होता है, क्योंकि प्रत्येक विद्यार्थी की मानसिक क्षमता समान वर्ग में होते हुए भी अलग-अलग होती है। यह क्षमता हम सभी में भिन्न-भिन्न होती है। इसका कुछ

भाग आनुवंशिक, प्राकृतिक अथवा प्रकृतिदत्त होता है तो कुछ भाग अभ्यास के द्वारा अर्जित होता है और दोनों के सम्मिश्रण अनुपात में अलग-अलग व्यक्तियों में भिन्नता पाई जाती है। प्रबंध का दायित्व, इस संदर्भ में सभी को साथ लेकर संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करना होता है, ताकि संगठन एवं समाज दोनों की परस्पर धारणीयता बनी रहे। विशिष्ट बाजार, विशिष्ट तकनीक तथा वित्तीय संसाधनों की प्राप्ति अस्थायी है, क्योंकि समानांतर परिस्थितियों में यह सभी को प्राप्य है, लेकिन अंतर होता है व्यक्तियों, संस्था की संस्कृति एवं मूल्यों में। महत्त्वपूर्ण यह है कि उनकी पुनरावृत्ति करना प्रत्येक संस्था के लिए संभव नहीं होता है, क्योंकि गुण, शैली एवं संस्कृति व्यक्ति -परक होती है। इसलिए इतिहास इस बात का साक्षी है कि जो संगठन अपने मूल्यों एवं संस्कृति को सुरक्षित एवं संवर्धित करते हैं, वे दीर्घायु को प्राप्त होते हैं और यही कारण है कि भारत, चीन, यूनान एवं रोम की सभ्यता सबसे पुरानी है और यह आज पूर्णतः प्रगतिपथ पर अग्रसर है। लकिन ऐसा अन्य सभ्यताओं, समाजों और संगठनों के विषय में सत्य नहीं है, क्योंकि उनके आयुष की दीर्घता तीसरी पीढ़ी (75 वर्ष) के साथ ही समाप्त हो जाती है। व्यावसायिक संगठनों की औसत आयु 20 वर्ष ही है, क्योंकि संविलियन, अधिग्रहण अथवा निस्सारता के कारण आर्थिक दृश्य से हट जाते हैं और उसका प्रमुख कारण प्रबंधकीय उन्माद, अहंकार अथवा संगठनात्मक दोष हैं।

जो संगठन अपने मूल्यों एवं संस्कृति को सुरक्षित एवं संवर्धित करते हैं वे दीर्घायु को प्राप्त होते हैं और यही कारण है कि भारत, चीन, यूनान एवं रोम की सभ्यता सबसे पुरानी है ।

नेतृत्व का शाब्दिक अर्थ अधिशासियों को लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रेरित एवं दिशा-निर्देशित करना है। प्राचीन काल में वर्तमान निगमों जैसी संस्थाएँ नहीं थीं और न ही अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कार्य करने वाली व्यावसायिक इकाइयाँ ही थीं। समाज का संचालन एक राजा (वर्तमान में प्रबंधक) करते थे। राजा प्रजा (अधिशासियों) की भलाई एवं संवर्धन के लिए कार्य करते थे। उनका आचरण ही प्रजा के लिए अनुकरणीय होता था। यह ध्यान देने योग्य है कि वेद, पुराण, मीमांसा, गीता अथवा रामायण में जो निर्देश राजा को प्रजा हित की रक्षा करने के लिए दिए गए हैं, उसका आधार धर्म ही है। धर्म को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि वह धारण योग्य तथा सभी को संगठित करने वाला हो तथा जिसके अभाव में संसार की स्थिरता एवं सुसंगतता छिन्न-भिन्न हो जाती है। धर्म के आधार पर ही समस्त कायनात के विभिन्न अंग सुचारू रूप से अपना-अपना कार्य करते हैं, ठीक वैसे ही जैसे अग्नि, वायु, सूर्य, जल, पृथ्वी, वृक्ष, कीट, पतंगे, मानव आदि अपना-अपना व्यवहार नियमित करते हैं। पूजा पद्धति धर्म नहीं है बल्कि सिद्धांतों की क्रियाशीलता की ऐसी व्यवस्था है, जिससे समस्त तारामंडल, भूमंडल, क्षितिज एवं अन्य सभी अवयव सुमनोहर रूप से अपने-अपने कर्तव्य का निर्वाह करते हैं। अतः जब-जब धर्म का क्षय होता है तो उसके पुनरुत्थान के लिए युग-परिवर्तन होता है। राम-रावण युद्ध एक ऐसी ही युग परिवर्तन की पराकाष्ठा है।

जब दैत्यराज रावण और भगवान् राम युद्ध के मैदान में एक-दूसरे के आमने-सामने हैं तो विभीषण रावण पर राम की विजय के विषय में संशय व्यक्त करते हुए कहते हैं, हे प्रभु! न तो आपके पास रथ है और न आपके पास कवच है, आपके पैर एवं शरीर पूर्णतः असुरक्षित हैं अतः आप रावण पर विजय कैसे प्राप्त करेंगे? विभीषण के

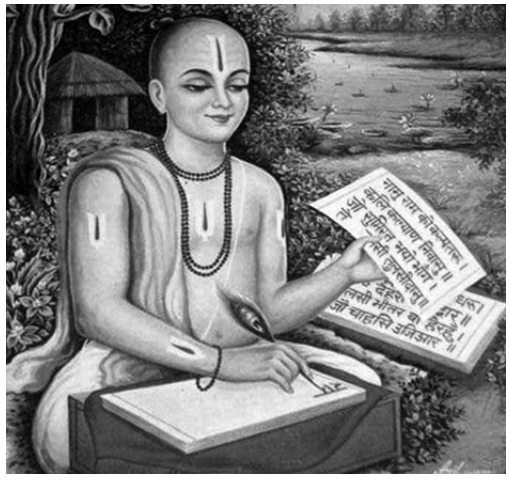

संदेह को समाप्त करने के लिए भगवान् राम ने कहा, 'हे सखा! जिस रथ से विजय प्राप्त की जाती है, वह रथ दूसरा ही है।'

सखा धर्ममय अस रथ जाके।
जीतन कहै न कतहुँ रिपु ताके।।
महा अजय संसार रिपु जीति सकहिं सो बीर।
जाके अस रथ होई दृढ सुनहु सखा मतिधीर।।

श्रीरामचरितमानस-6/80-6,80क

हे सखा! जिसके पास धर्ममय रथ हो, उसे कोई भी शत्रु जीतने में समर्थ नहीं है। वह वीर संसार रूपी दुर्जय शत्रु को भी जीत सकता है। रावण की तो बात ही क्या है? प्रश्न उठता है कि धर्ममय रथ कौन सा है? क्या वह भौतिक लकड़ी और लोहे का बना है अथवा उसमें ऐसे गुणों का समावेश है, जो विजय को अवश्यंभावी बना देते हैं। भगवान् राम ने विजयदायी रथ की व्याख्या करते हुए कहा है-

सौरज, धीरज तेहि रथ चाका।
सत्य सील दृढ ध्वजा पताका।।
बल बिबेक दम परहित घोरे।
छमा कृपा समता रजु जोरे।।
ईस भजन सारथी सुजाना।
बिरति चर्म संतोष कृपाना।।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा।
वर विग्यान कठिन को दंडा।।
अमल अचल मन त्रोन समाना।
सम जम नियम सिलीमुख नाना।।
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा।
एही सम बिजय उपाय न दूजा।।

श्रीरामचरितमानस-6/80-3,4,5

शौर्य और धैर्य जिस रथ के पहिए हैं, सत्य और सदाचार (शील) उसकी ध्वजा और पताका (राज्य-चिह्न) हैं। बल, विवेक, दम (इंद्रियों का वश में होना) और परोपकार उसके चार घोड़े हैं। जो क्षमा, दया और समता रूपी डोरी से रथ में जोड़े गए हैं। ईश्वर का भजन ही चतुर सारथि है। वैराग्य रूपी ढाल और संतोष ही तलवार है। दान फरसा है, बुद्धि प्रचंड शक्ति है, श्रेष्ठ विज्ञान रूपी कठिन धनुष है। निर्मल (पापरहित) और अचल मन तरकश के समान है। शम (मन का वश में होना), यम (अहिंसा और शौचादि) नियम यें बहुत से बाण हैं। ब्राह्मणों और गुरु का पूजन अभेद्य कवच है। इसके समान विजय का दूसरा उपाय नहीं है।

इस प्रकार रामचरितमानस में विजयी रथ के रूपक का प्रयोग करके गोस्वामीजी ने नेतृत्व की गुण अवधारणा का प्रतिपादन करते हुए सफल नेतृत्व की निम्नांकित विशेषताओं का विवेचन किया है–

- उद्देश्य की पवित्रता, जिसके लिए नेता क्रियाशील होता है (साध्य)।
- नेता की बुद्धि, मन और शरीर की पवित्रता (साधक)।
- धर्मसम्मत आचरण एवं सतत प्रयास (साधना)
- दैवीकृपा एवं गुरुओं का आशीष इन चारों के सम्मिश्रण से ही उद्देश्य की सफलता प्राप्त होती है।

साध्य की पवित्रता

उद्देश्य, दशा, दिशा एवं गति को निर्धारित करते हैं। लोग नेताओं के पीछे नहीं चलते अपितु, वे अपने हितों को पूरा करने वाले के पीछे चलते हैं। हितों की एक समानता ही निर्देशन का आधार है। नेतृत्व दीर्घ समय तक कार्यशील नहीं रहेगा, यदि उसमें ऐसा करने की क्षमता नहीं है। हथकंडेबाजी से क्षणिक लाभ तो मिल सकता है, लेकिन उसके परिणाम दूरगामी एवं धारणीय नहीं होंगे। यही कारण है कि आधुनिक प्रबंध मनीषी दीर्घदृष्टि, लक्ष्य

यदि संस्था किसी एक विशिष्ट पणधारी (स्टेक होल्डर) के हितों को ध्यान में रखेगी तथा अन्य पणधारियों के हितों को अनदेखा करेगी तो उद्देश्य की पवित्रता और समानता का नाश हो जाएगा। अतः विभिन्न पणधारियों के हितों में समन्वय लाना नेतृत्व का महत्त्वपूर्ण कार्य माना जाता है।

और उद्देश्यों की संगठन के संदर्भ में व्याख्या करते हैं। यदि व्यक्तिगत लक्ष्य, दृष्टिकोण और उद्देश्य संस्था के लक्ष्य और उद्देश्यों एवं दृष्टि से भिन्नता रखते हैं तो निश्चयात्मक रूप से घर्षण पैदा होगा, जो न व्यक्ति के हित में होगा और न ही संस्था के हित में होगा। अतः इनमें समन्वय एवं सुमधुरता अपरिहार्य है। यही नहीं, यदि संस्था किसी एक विशिष्ट पणधारी (स्टेक होल्डर) के हितों को ध्यान में रखेगी तथा अन्य पणधारियों के हितों को अनदेखा करेगी, तो उद्देश्य की पवित्रता और समानता का नाश हो जाएगा। अतः विभिन्न पणधारियों के हितों में समन्वय लाना नेतृत्व का महत्त्वपूर्ण कार्य माना जाता है। दिशा विहीन न होना तथा लक्ष्य प्राप्ति सभी के मंगल के लिए हो, यह नेतृत्व का परम कर्तव्य है।

सफलता का नया आधार (साधक)

स्वस्थ जीवन के लिए शरीर, स्थूल का सही सूचकांक वर्तमान स्वास्थ्य का परिचायक माना जाता है। भौतिक हठता आवश्यक है, लेकिन पर्याप्त नहीं। मन, बुद्धि एवं प्रज्ञा के समन्वय की आवश्यकता है, क्योंकि सभी कार्य मानसिक निर्देश से ही संपन्न होते हैं। अंतर्मन की स्थिरता और शरीर की क्रियाशीलता बुद्धि के अधीन होनी चाहिए। अनियंत्रण एवं वैचारिक शुद्धता संपन्न तथा व्यक्तिगत एवं पारिवारिक हितों से परे व्यक्तियों की नेतृत्व के लिए आवश्यकता होती है, वर्तमान समय में ऐसे व्यक्तियों का अभाव दृष्टिगोचर होता है।

संसाधनों की व्यवस्था (साधन)

प्रबंधकों का कार्य अपने अधीनस्थ समूह को आवश्यक सामग्री, तकनीक, प्रक्रिया एवं संगठन प्रदान करना है। अधिकांशतः संसाधनों की अपूर्णता उद्देश्यों की प्राप्ति में बाधक होती है, अतः प्रबंधकों का दायित्व है कि सभी व्यक्तियों में संसाधनों का अनुकूलतम आवंटन करें ताकि सभी अपने-अपने कार्यों का निष्पादन कर सकें। संगठन के दृष्टिकोण से ज्ञान, तकनीक एवं संयंत्रों का उपयोग ज्यादा महत्त्वपूर्ण होता है, बजाय उन पर कुंडली मारकर बैठे रहना। समस्त अफ्रीका में प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता है लेकिन उनका उपयोग न होने के कारण वहाँ के लोग गरीब हैं। लगभग यही स्थिति भारत के उत्तर-पूर्वीय प्रदेशों की है, जहाँ संसाधन तो हैं, लेकिन उनका उपयोग नहीं के बराबर है। संसाधनों को उपलब्ध कराने से व्यक्ति अपनी क्षमता का भरपूर प्रयोग करने में समर्थ होता है।

निष्पादन प्रक्रिया (साधना)

विचारहीन कार्य एवं क्रियाहीन विचार दोनों ही घातक होते हैं। विचारों की कर्म में परिणिति से उद्देश्य प्राप्त होते हैं। भारतीय धर्मग्रंथ क्रिया की पवित्रता और निरंतरता पर जोर देते हैं, क्योंकि किसी भी कार्य के बार-बार नियमित रूप से करने पर उस कार्य में दक्षता एवं पूर्णता प्राप्त होती है। विचारों का मंथन सोच को नई दिशा देता है और कार्य करने के नए तरीकों का विकास होता है, अतः नेतृत्व को यह ध्यान देना चाहिए कि सीखने-खोने एवं पुनः सीखने की प्रक्रिया अनवरत रूप से जारी रहनी चाहिए। नवाचार के लिए यह अत्यंत आवश्यक है।

दैवी कृपा

मैं जो कर रहा हूँ, वह मैं नहीं कर रहा हूँ बल्कि मैं क्रिया का मात्र मूक द्रष्टा हूँ, क्योंकि जो घटित हो रहा है, जिस समय एवं परिस्थिति में, वह दैवी कृपा का ही परिणाम है। इसका आशय यही है कि हमारे कर्ताभाव के अहं के मर्दन के लिए हम विनम्र बनें, ताकि तमस का दमन हो सके। यहाँ ध्यातव्य है, किसी भी अनुबंध के निष्पादन में भी दैवी कारणों को ध्यान में रखा जाता है। यदि कानून यह मानता है तो प्रकृति के स्वाभाविक स्पंदन को स्वीकार करना ही कुशाग्रता का लक्षण होगा।

सर्वहितकारिता

भारतीय विचारधारा की महत्त्वपूर्ण धुरी 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' का सिद्धांत है। कोई भी कर्म, जो जनता के हित में नहीं है, वह राजा (प्रबंधक) के हित में भी नहीं होता है। प्रबंधक के हित में अधिशासियों का हित नहीं होता और अधिशासियों के हित में संगठन का कल्याण निहित नहीं होता है क्योंकि प्रजा (सभी पणधारियों) के हित संरक्षण में ही प्रबंधक की सफलता एवं दक्षता निहित होती है।

जासु राज जन प्रजा दुखारी।
तिन्हे विलोकित पातक भारी।।

नेता कैसा होना चाहिए

पाश्चात्य प्रबंध दर्शन में हमें अधिशासी, निरंकुश प्रजातांत्रिक व उदारवादी नेताओं का वर्णन मिलता है, जो भारतीय विचार से भिन्न है। तुलसीदासजी ने नेता के गुणों की व्याख्या करते हुए कहा है–

मुखिया मुख सो चाहिए खान पान को एक
पालत पोषित सकल अंग तुलसी सहित विवेक।।

एक नेता को मुख के समान होना चाहिए, जो खाने और पीने दोनों का काम करता है अर्थात् उसकी कथनी -करनी में अंतर नहीं होना चाहिए। जैसे मुख अपने लिए नहीं खाता बल्कि विवेक पूर्ण रीति से सभी अंगों का पोषण और पल्लवन करता है, उसी प्रकार प्रबंधक को प्रबंध, संगठन, कर्मचारी, माल की आपूर्ति करने वाले, ऋण प्रदान करने वाले, उपभोक्ता, राज्य एवं समाज सभी की आवश्यकताओं को ध्यान में रखना चाहिए।

अंततः यह कहा जा सकता है कि तुलसीदास ने मानसकथा के माध्यम से एक अच्छे यशस्वी राजा के गुणों, उनकी विशेषताओं और उनके परिणामों की मंगलकारी चर्चा की है। यदि व्यावसायिक परिवेश में हम इन बातों का ध्यान रखें तो अवश्य ही हमारे प्रतिष्ठान मंगलकारी होंगे। ■

लेखक महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय,
बड़ौदा के प्रबंध अध्ययन संकाय के
पूर्व विभागाध्यक्ष एवं संकायाध्यक्ष हैं।

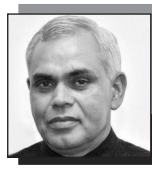

डॉ. देवव्रत आचार्य

वैज्ञानिक और धार्मिक दृष्टि से

मांसाहार का निषेध

जीवों के प्रति करुणा रखने वाला व्यक्ति उनके प्रति हिंसात्मक नहीं हो सकता। वह न तो उन्हें मारता है, न मांसाहार करता है। मानवीय शरीर की संरचना भी मांसाहार के अनुकूल नहीं है। प्रकृति प्रदत्त अनेकानेक सुपाच्य व स्वास्थ्यवर्धक खाद्यान्न, सब्जियों व फलों के होते हुए भी मांसभक्षण की वृत्ति कहाँ तक औचित्यपूर्ण है?

मनुष्य स्वयं को संसार के समस्त प्राणियों से ऊँचा या श्रेष्ठ मानता है, परंतु उसे इतना भी ज्ञान नहीं कि वह क्या खाए और क्या न खाए? संसार के समस्त पशु-पक्षी यह जानते हैं कि उन्हें क्या खाना है और क्या नहीं खाना? संसार के पशु-पक्षियों को आहार की शिक्षा कहीं भी नहीं दी जाती।

इसके विपरीत मनुष्य को धर्म-ग्रंथों से लेकर आधुनिक वैज्ञानिक तक यही शिक्षा दे रहे हैं कि मांस मनुष्य का भोजन नहीं है, परंतु मनुष्य ने किसी भी सद्परामर्श को नहीं माना और न आज मान रहा है। वह अपने अस्त्र-

शस्त्र के बल पर निरीह पशु-पक्षियों की निर्दयतापूर्वक हत्या करके उन्हें खाता जा रहा है।

संसार का कोई भी मनुष्य यह नहीं चाहता कि कोई हिंसक मनुष्य या पशु-पक्षी मुझे, मेरे संबंधी, मेरी संतान, मेरे इष्ट-मित्रों को किसी भी प्रकार का कष्ट दे अथवा उन्हें मारकर खा जाए। जो कसाई प्रतिदिन अनेक पशु-पक्षियों की हत्या करके उनके शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके बेचता और खाता है, वह भी यह नहीं चाहता कि कोई उसके बाल-बच्चों, इष्ट मित्रों और संबंधियों को मारे या उनका मांस खाए। हत्यारे कसाई को भी छोटी-सी सुई चुभने पर भारी कष्ट होता है। वह सुई का चुभना भी सहन नहीं करना चाहता, फिर बताएँ, उसे किसी निरपराध प्राणी को मारने, काटने और खाने का अधिकार कैसे हो सकता है?

वैज्ञानिक यह सिद्ध कर चुके हैं कि अंडा और मांसाहार मनुष्य के शरीर के अनुकूल नहीं हैं, क्योंकि मांसाहार से शरीर में अनेक भयंकर रोग हो जाते हैं। अंडा-मांस खाने से रक्त में कॉलेस्ट्रॉल की मात्रा बहुत अधिक बढ़ जाती है, पित्ताशय में पथरी हो जाती है, हृदय रोग हो जाता है, त्वचा की कोमलता, स्निग्धता एवं सौंदर्य नष्ट हो जाता है और त्वचा कठोर हो जाती है; रक्त अशुद्ध हो जाता है, शरीर में उत्तेजना बढ़ जाती है, सात्त्विक बुद्धि नष्ट हो जाती है। शरीर से दुर्गंध आने लगती है, रक्तचाप बढ़ जाता है, गुर्दों के रोग हो जाते हैं, कैंसर रोग हो जाता है, पाचन क्रिया विकृत हो जाती है, श्वास की गति व हृदय की धड़कन बढ़ जाती है, मस्तिष्क में अशांति बढ़ जाती है तथा मनुष्य हिंसा करने वाला बन जाता है।

आइए, अब थोड़ा उन दार्शनिकों और वैज्ञानिकों के कथनों को देखते हैं, जिन्होंने मांसाहार पर शोध किया है। दार्शनिक पाइथागोरस कहते हैं- ''लोगों ने तुम्हारे लिए बिना रक्त बहाए उत्तम भोजनों की व्यवस्था की है, फिर क्यों पापपूर्ण अखाद्य मांस के लिए ललचाते हो। वह मत खाओ जो तुम्हारे लिए सर्वथा अयोग्य है।'' जार्ज बर्नार्ड शॉ कहते हैं, ''युद्धों की उत्पत्ति, अपराधों की उत्पत्ति, मनोविकारों की बाढ़, आवेश और क्रूरता का प्रधान कारण बढ़ता हुआ मांसाहार ही है।''

अमेरिका के आहार शास्त्री एच.एल. एंडरसन ने अपने भोजन-विज्ञान संबंधी ग्रंथ में लिखा है, ''हम सभ्यताभिमानियों के हाथ मूक और उपयोगी पशुओं के रक्त से रँगे हैं। हमारे माथे पर उनके रक्त का कलंक है।

संसार का कोई भी मनुष्य यह नहीं चाहता कि कोई हिंसक मनुष्य या पशु-पक्षी मुझे, मेरे संबंधी, मेरी संतान, मेरे इष्ट मित्रों को किसी भी प्रकार का कष्ट दे अथवा उन्हें मारकर खा जाए।

हमारा पेट एक घिनौना कब्रिस्तान है। शरीर का दुर्गंध हमारे मुख से निकल रहा है। क्या यही हमारा मानवोचित आहार है? यह राक्षसी वितृष्णा का परितोषण करना है।''

शाकाहार और मांसाहार का तुलनात्मक अध्ययन करने में अपने जीवन का अधिकांश भाग लगा देने वाले यूरोपीय शोधकर्ताओं डॉ. हॉग, प्रो. बेल्व, एफा ई. निकलस तथा एरनाल्ड एहरिट ने एक स्वर से स्वीकार किया है कि मांसाहार की पौष्टिकता और उपयोगिता के संबंध में जो अंधविश्वास फैला हुआ है, वह निरर्थक है तथा शाकाहार की तुलना में मांसाहार दुष्पाच्य है।

एलेजिन विश्वविद्यालय बवेरिया के प्रो. टीनिंग और प्रो. स्कोइंग का कहना है कि मांस की तुलना में सोयाबीन, गेहूँ, काजू आदि से प्राप्त चिकनाई कहीं अधिक सुपाच्य और निर्दोष होती है।

हार्वर्ड मेडिकल स्कूल के डॉ. ए. वाचमैन, डॉ. डी. एस. वर्न्सस्टीन के वर्षों तक के शोध के अनुसार–

''लोगों ने तुम्हारे लिए बिना रक्त बहाए उत्तम भोजनों की व्यवस्था की है, फिर क्यों पापपूर्ण अखाद्य मांस के लिए ललचाते हो। वह मत खाओ जो तुम्हारे लिए सर्वथा अयोग्य है।''
–पाइथागोरस

'मांसाहारियों का मूत्र प्रायः अम्लीय होता है, क्योंकि मांस से अम्लता उत्पन्न होती है, फलतः शरीर के पी.एच. को उदासीन रखने के लिए हड्डियों के क्षारीय लवण घुलने लगते हैं और हड्डियाँ कमजोर हो जाती हैं।'

जार्जिया स्कूल ऑफ मेडिसन विश्वविद्यालय के वी.पी. सिडेन स्टीकर, ए.पी. ब्रिग्स तथा एन.एम. डे बाउग्र के अनुसार– अंडे से अवसाद, हृदय पर दबाव, चेतना-शून्यता, सनसनाहट, मितली, भारीपन, त्रास, हीमोग्लोबिन की कमी आदि रोग होते हैं। विसकांसिन के तीन शोधकर्ताओं के अनुसार– अंडे से यकृत् कैंसर की संभावना अधिक रहती है। कृषि विभाग फ्लोरिडा के 18 माह के शोध के अनुसार अंडों में 30 प्रतिशत डी.डी.टी. विष होता है। जर्मन कैंसर रिसर्च सेंटर हिडलबर्ग के डॉ. रैनर फ्रैंट्जेल बेडम एवं उनके साथियों के अनुसार मांसाहारियों में आमाशय व यकृत के कैंसर, मोटापा, कॉलेस्ट्रॉल की वृद्धि की आशंका अधिक रहती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार मांसाहार से 160 प्रकार की बीमारियाँ फैलती हैं। नोबल पुरस्कार विजेता अमरीकन आयुर्विज्ञानी डॉ. ब्राउन तथा गोल्डस्टीन के अनुसार– मांसाहार से दिल के दौरे की आशंका बढ़ जाती है। यह संभव है कि कुछ व्यक्ति बिना किसी प्रकार की क्षति के मांस सेवन कर रहे हैं, पर यह निश्चय है कि इस प्रकार के अमानुषिक भोजन का परिणाम जल्दी अथवा देर से अवश्य प्रकट होगा। लीवर और किडनी दूषित होकर अपना काम करना छोड़ देंगे और उसके फलस्वरूप क्षय, कैंसर व गठिया आदि रोग हो जाएँगे। –मेरी एस. ब्राउन

कहाँ तक बताएँ, मांसाहार से होने वाली हानियों पर हजारों विद्वानों (वैज्ञानिकों) ने शोध कर लेख लिखे, जिसे पढ़-पढ़कर भी मनुष्य अंधा बना हुआ है। ऐसे ही लोगों के लिए वेद में कहा गया है–

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः श्रृण्वन्न श्रृणोत्येनाम्।

(ऋ, 10/71/4)

वेदादि धर्मग्रंथों में पशु-पक्षियों ही हत्या और उनके मांसाहार को निषिद्ध माना गया है, जिसके कुछ प्रमाण यहाँ प्रस्तुत हैं–

मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः

(ऋ,1/114/8)

गो आदि दुधारु पशुओं को मत मारो, भारवाही घोड़े आदि पशुओं को मत मारो।

इममूर्णायुं वरुणस्य.....।
.....परमे व्योमन्।।

(यजु, 13/50)

धर्म का अर्थ है– दूसरों को सुख देना और अधर्म का अर्थ है– दूसरों को दुःख देना। अधर्म को ही पाप भी कहते हैं और अधर्म या पाप का फल घोर दुःख होता है। किसी भी निर्दोष जीवधारी का जीवन समाप्त करना तो महापाप है। मांसाहार करने वाले व्यक्ति भयंकर रोग-शोक आदि दुःखों को भोगते हैं, अतः जो मनुष्य रोग-शोक आदि दुःखों से बचना चाहें, वे अविलंब हमेशा के लिए मांसाहार को त्याग देवें।

इन दो पग वाले मनुष्य, पक्षी आदि तथा ऊन रूपी बालों वाले भेड़, बकरी, ऊँट आदि चौपायों को मत मार।

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा।।

(अथर्व, 1/16/4)

यदि तुम हमारी गाय और घोड़ों का हनन करोगे तो हम तुझे शीशे की गोली से बेधते हैं, जिससे तू हमारे पशुओं और वीरों का हनन कर्ता न रहे।

घातकः खादको वापि तथा यश्चानुमन्यते।
यावन्ति तस्य रोमाणि तावद् वर्षाणि मज्जति।।

(महाभारत अनुशासनपर्व, 74/4)

प्राणियों को मारने वाला, उसे खाने वाला, मारने की सम्मति देने वाला– ये सब उतने वर्ष तक दुःख में डूबे रहते हैं, जितने मरने वाले पशु के रोम होते हैं।

वर्जयेन्मधु मांसं च।

(मनु, 2/177)

मद्य और मांस का सेवन नहीं करना चाहिए।

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्त्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकः।।

(मनु, 5/51)

प्राणियों को मारने की आज्ञा देने वाला, मांस काटने वाला, प्राणियों को मारने वाला, मारने के लिए क्रय और विक्रय करने वाला, मांस पकाने वाला, मांस परोसने वाला और मांस खाने वाला–ये सब हत्यारे और पापी हैं।

ईसाइयों के पवित्र धर्मग्रंथ बाइबिल में भी मांसाहार का निषेध किया गया है। वहाँ कहा गया है–

'जीव हिंसा से बचें और मांसाहार न करें, क्योंकि परमात्मा न्यायकारी और दयालु है और उसकी पवित्र आज्ञा है कि मनुष्य पृथ्वी पर शाकाहारी ही होकर रहे।' (बाइबिल, 33/6/1)

हाड़ मांस मछली सुरा जो-जो प्राणी खाय।
तीर्थ व्रत अरु नेम किए, सबै रसातल जाय।।

(गुरुग्रंथ, कबीर वाणी)

मांस, मछली, खानेवालों तथा मदिरापान करने वालों के लिए किए गए तीर्थ, धर्म, कर्म सभी रसातल को जाते हैं।

उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि विश्व के सभी धर्मग्रंथों और सभी महापुरुषों ने मांसाहार को पाप तथा मनुष्य के लिए अभक्ष्य माना है।

धर्म का अर्थ है–दूसरों को सुख देना और अधर्म का अर्थ है– दूसरों को दुःख देना। अधर्म को ही पाप भी कहते हैं और अधर्म या पाप का फल घोर दुःख होता है। किसी भी निर्दोष जीवधारी का जीवन समाप्त करना तो महापाप है। मांसाहार करने वाले व्यक्ति भयंकर रोग-शोक आदि दुःखों को भोगते हैं, अतः जो मनुष्य रोग-शोक आदि दुःखों से बचना चाहें, वे अविलंब हमेशा के लिए मांसाहार को त्याग देवें। ■

लेखक शिक्षाविद् व हिमाचल प्रदेश के महामहिम राज्यपाल हैं।

डॉ. ज्योत्स्ना

स्वच्छता पर निर्भर है स्वास्थ्य

हमारे प्रधानमंत्रीजी द्वारा प्रारंभ किए गए स्वच्छ भारत अभियान को हम स्वास्थ्य सेवाओं से जुड़े लोग स्वस्थ भारत अभियान भी मान सकते हैं, क्योंकि स्वास्थ्य स्वच्छता पर भी निर्भर है। बहुत छोटी-छोटी सावधानियों से ही हम स्वास्थ्य के क्षेत्र में बड़ा योगदान कर सकते हैं।

व्यक्तिगत स्वच्छता, अपने आसपास व संपूर्ण पर्यावरण की स्वच्छता का यदि ध्यान रखा जाए तो हम अनेक रोगों से बचे रह सकते हैं। स्वच्छ भोजन, स्वच्छ जल, स्वच्छ वायु और भूमि हमारे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं। शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता व शरीर का पोषण तभी हो पाता है, जब इन सभी की स्वच्छता हो। स्वच्छ भारत अभियान को सभी चिकित्सकों और विशेष रूप से प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों पर कार्यरत चिकित्सकों का यह विशेष दायित्व होना चाहिए कि स्वच्छता के स्वास्थ्य पर प्रभाव से पूरे क्षेत्र को समय-समय पर अवगत कराएँ, एक चेतना विकसित करें, ताकि उनके क्षेत्र में अस्वच्छता से फैलने वाले रोगों से बचा जा सके।

अकसर हम बड़ी-बड़ी बीमारियों के बारे में पढ़कर, सुनकर इतने डरे रहते हैं कि अपने पास बैठे सामान्य दिखने वाले रोग को शत्रु नहीं समझते और असावधानी बरतते चले जाते हैं। यूनीसेफ और विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार विश्व में दस्त (अतिसार) बच्चों की मृत्यु का दूसरा सबसे बड़ा कारण है। विकासशील देशों में तो यह गंभीर समस्या है। भारत में बच्चों की कुल मृत्यु का आँकड़ा बहुत ज्यादा है, हालाँकि अब कुछ वर्षों

से इसमें गिरावट आनी शुरू हो गई है। अतिसार (दस्त) से मृत्यु न भी हो तो भी इसके कारण कुपोषण, शरीर और बुद्धि का अविकसित रहना एक बड़ी समस्या है।

इस अंक में हमारा प्रयास है कि आप इस सामान्य से दिखने वाले और सामान्यतया होने वाले, किंतु घातक रोग के बारे में जानें, जिससे आप अपने पास उपलब्ध उपायों से इस पर नियंत्रण कर सकें।

अतिसार

अतिसार या डीएसटी या डायरिया एक ऐसी स्थिति है जिससे आँतों में जल का अवशोषण कम हो जाता है या आँतों से जलस्राव बढ़ जाता है। बार-बार पतले मल का त्याग होने को अतिसार कहते हैं। तीन से ज्यादा पतले मल की प्रवृत्ति हो तो इसे अतिसार समझना चाहिए।

आमतौर पर यह सामान्य (अघातक) होता है और कुछ सामान्य घरेलू उपायों से अथवा स्वयं ही ठीक हो जाता है, लेकिन यदि इतना गंभीर हो कि निर्जलन (डिहाइड्रेशन) की स्थिति आ जाए, तो इसे गंभीरता से लेने की आवश्यकता है। इस स्थिति में बच्चों और बुजुर्गों में विशेष सावधानी बरतने की आवश्यकता है, क्योंकि तेजी से घातक हो जाता है, निर्जलन (डिहाइड्रेशन) इसका गंभीर परिणाम है।

अतिसार आकस्मिक और दीर्घकालिक दोनों ही हो सकता है। दोनों स्थितियों के कारण और चिकित्सा अलग-अलग हैं। वैसे सामान्यतया इसे घर में सामान्य उपचार से नियंत्रित किया जा सकता है।

संक्रमण के प्रमुख कारण

- इन्फेक्शन (संदूषण, संक्रमण) –बैक्टीरिया, जैसे अमीब द्वारा, वायरल या पैरासिटिक (पेट के कीड़ों के द्वारा)।
- भोजन विषाक्तता।
- एलर्जी (असहनीयता)–कुछ लोगों में किसी विशेष भोजन के प्रति असहनीयता होती है, जैसे दूध (लैक्टोज इंटालरेंस), गेहूँ (व्हीट एलर्जी)।
- कुपोषण –बच्चों में विशेष रूप से।
- अपचन– अति भोजन या अति गरिष्ठ भोजन से।
- किसी अन्य रोग के साथ –जैसे टायफॉइड में।
- किन्हीं ओषधियों के कारण– एंटीबायोटिक आदि।
- कोई रेचक दवाई लेने से।

अतिसार रोग के उपचार की दृष्टि से हमारे आस-पास मिलने वाले पौधों में बेल बहुत महत्त्वपूर्ण है, इसलिए इसका नाम श्रीफल है। अतिसार के उपचार के अलावा भी इसके बहुत उपयोग हैं।

इनमें से इन्फेक्शन (संक्रमण) अतिसार होने का सबसे बड़ा कारण है और ज्यादातर इन्फेक्शन दूषित भोजन तथा जल के कारण होते हैं। इसलिए स्वच्छता बहुत आवश्यक है।

अतिसार कई प्रकार से हो सकता है–

- थोड़ी देर पतले मल आना।
- थोड़ी देर किंतु मल से खून का आना।
- लंबा चलने वाला– इस प्रकार का अतिसार दो सप्ताह तक भी चल सकता है।

बचाव

- **स्वच्छता—** भोजन का ताजा और स्वच्छ होना बहुत आवश्यक है। मक्खी आदि से भोजन की सुरक्षा करें। पीने का साफ पानी होना व भोजन के पहले

हाथ धोने की आदत बहुत आवश्यक है। विशेष रूप से बच्चों को हाथ धोने की आदत डालनी चाहिए।

बहुत छोटे बच्चों को रोग से बचाए रखने के लिए यह महत्त्वपूर्ण है कि उन्हें माँ का दूध ही दिया जाए, क्योंकि बोतल स्वच्छ नहीं रह पाती और संक्रमण का कारण बनती है। यहाँ एक विशेष बात यह है कि स्तनपान करने वाले बच्चों में बार-बार मलत्याग होता है, लेकिन इसे अतिसार नहीं कहते।

भोजन का ताजा और स्वच्छ होना बहुत आवश्यक है। मक्खी आदि से भोजन की सुरक्षा करे। पीने का साफ पानी होना व भोजन के पहले हाथ धोने की आदत बहुत आवश्यक है। विशेष रूप से बच्चों को हाथ धोने की आदत डालनी चाहिए।

- **पोषण—** अतिसार से बचाव के लिए पोषण बहुत आवश्यक है। पोषित व्यक्ति को अतिसार कम होता है, लेकिन बच्चों में एक विशेष समस्या यह है कि कुपोषण से अतिसार होता है तथा इससे बच्चा और कुपोषित हो जाता है, और फिर अतिसार की प्रवृत्ति अधिक हो जाती है।
- **चिकित्सा—** अतिसार के उपचार के लिए प्रायः किसी दवाई की आवश्यकता नहीं होती, किंतु यदि मल में रक्त आ रहा हो तो तुरंत चिकित्सक के पास जाना चाहिए। अतिसार के साथ यदि तेज बुखार हो तो भी चिकित्सक के परामर्श के बिना दवाई न लें।

विशेष रूप से निर्जलन से बचे रहें और इसके लिए तरल पदार्थ लेते रहें, जैसे– चीनी व नमक का घोल, ओ.आर.एस. घोल, संतरे-मौसमी का रस, अनार का रस आदि।

- **पोषण—** पचने में हल्का, तरल आहार बार-बार थोड़ा-थोड़ा लेते रहें। पका केला, दही, उबला आलू या चावल की माँड जैसे अधिक स्टार्च वाले भोजन लें।
- **आराम—** शरीर को आराम मिलने पर अतिसार जल्दी ठीक होता है।

अतिसार के उपचार के लिए घरेलू नुस्खे

- बबूल का पेड़ अतिसार में बहुत उपयोगी है। बबूल की कोमल पत्तियाँ, सफेद जीरा व काला जीरा मिलकर आधा-आधा चम्मच दिन में तीन बार दें।
- पुराने अतिसार में बबूल की छाल का काढ़ा आधा-आधा कप तीन-चार बार दें।
- अनार का छिलका व बेल की गिरी पीसकर कत्था मिलाकर दें।
- बरगद की कोमल पत्तियों या जटा को चावल की माँड़ या छाछ के साथ दें।
- अनार के छिलके का काढ़ा बनाकर साथ में लौंग या दालचीनी का चूर्ण दें।
- 3-4 चम्मच ईसबगोल के बीजों को एक कप पानी

बेल भारत में बहुतायत से मिलने वाला वृक्ष है। इसके जड़, छाल, फल (कच्चे व पक्के), पत्ते, गुल्म सभी का ओषधियों में उपयोग होता है। यहाँ तक कि महर्षि चरक ने तो इसकी लकड़ी से सूतिका का पलंग बनाने को कहा है। यज्ञ में भी इसकी आहुति देने से आयु की वृद्धि होती है। दशमूल में भी इसकी मूल या छाल ली जाती है। कच्चा फल कटु, तिक्त, कषाय, दीपन, ग्राही, वात-कफनाशक और आँतों को बल देने वाला है।

में चीनी डालकर भिगोएँ, लुआबदार हो जाने पर पूरा पी जाएँ।

- बच्चों को अतिसार में अमरूद के पेड़ की छाल का काढ़ा अच्छा गाढ़ा करके पिलाएँ।
- यदि बच्चे (शिशु) को ठंड लगी है और उसे दस्त हैं तो जायफल घिसकर दें।
- अजवायन का काढ़ा (डेढ़ सौ ग्राम अजवायन को एक लीटर पानी में ढककर उबालें व ढके-ढके ठंडा होने दें) यदि अपचन हो तो आधा-आधा कप दिन में दो-तीन बार दें ।
- मरोड़ सहित दुर्गंधित मल हो तो सौंफ का अर्क या काढ़ा दें।
- अजवायन, धनिया, सौंफ और जीरे को मिलाकर ढक-कर उबालें, ढके-ढके ठंडा होने दें, फिर थोड़ा-थोड़ा काढ़ा बार-बार दें।
- पुराने अतिसार में बेलगिरी, मोचरस या ढाक का गोंद (कतीरा) और मिश्री 3:2:1 के अनुपात में मिलाकर 2-3 ग्राम दिन में 2-3 बार दें।
- आम की गुठली की गिरी का चूर्ण दें।
- सोंठ और सौंफ को भिगोकर, पीसकर चीनी या मिश्री मिलाकर दें।
- भुना जीरा दें।
- कपूर अर्क की कुछ बूँदें दें।

अतिसार रोग के उपचार की दृष्टि से हमारे आस-पास मिलने वाले पौधों में बेल बहुत महत्त्वपूर्ण है, इसलिए इसका नाम श्रीफल है। अतिसार के उपचार के अलावा भी इसके बहुत उपयोग हैं। आवश्यकता है कि हम इस वृक्ष की उपयोगिता को समझें, इसे प्रचलित करें और इसके संरक्षण में अपना पूरा सहयोग करें।

बेल (बिल्व), श्रीफल

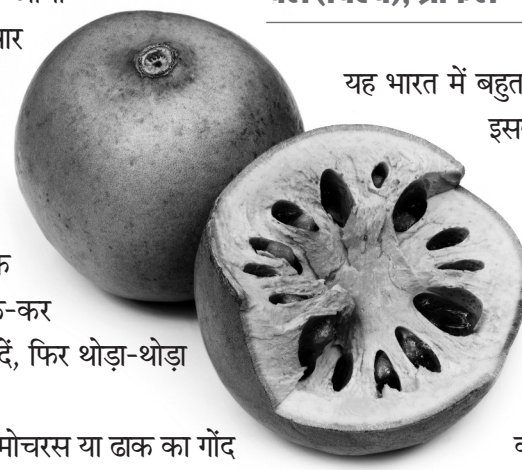

यह भारत में बहुतायत से मिलने वाला वृक्ष है। इसके जड़, छाल, फल (कच्चे व पक्के), पत्ते, गुल्म सभी का ओषधियों में उपयोग होता है। यहाँ तक कि महर्षि चरक ने तो इसकी लकड़ी से सूतिका का पलंग बनाने को कहा है। यज्ञ में भी इसकी आहुति देने से आयु की वृद्धि होती है। दशमूल में भी इसकी मूल या छाल ली जाती है। कच्चा फल कटु, तिक्त, कषय, दीपन, ग्राही, वात-कफनाशक और आँतों को बल देने वाला है। पका फल मधुर, अनुलोमक, गुरु व दुर्गंधयुक्त अधो वायु को निकालने वाला है।

बिल्व पत्र वातहर, शोधहर, ज्वरहर, ग्राही, आमदोष

श्लेष्मा निस्सारक है।

बिल्व मूल वातशामक, वातहर, उलटी दूर करने वाला है। बिल्व पुष्प अतिसार हर, तृष्णा व वमन (उलटी) दूर करते हैं।

उपयोग

- अतिसार, रक्तातिसार, प्रवाहिका में भूना हुआ कच्चा फल या सूखे हुए गूदे को चूर्ण कर दो ग्राम दो बार नियमित दें। यदि पाचन खराब हो, ज्वर हो, जीर्ण अतिसार हो तो यह बहुत लाभ करता है।
- (क) आँव व रक्त व कुंथन युक्त प्रवाहिका में बिल्व के चूर्ण का सेवन करने से मलबंध जाता है और रक्त नहीं आता। (ख) बेलगिरी चूर्ण, सौंफ चूर्ण व बच चूर्ण को मिलकर लेने से आँव खत्म हो जाती है। (ग) अरारोट व बेलगिरी चूर्ण मिलाकर देने से मल बंध जाता है। (घ) बेल का कल्फ व तिल का कल्फ दही में मिलाकर देने से आँतों को बल मिलता है। (च) बेलगिरी, मुलैठी व शर्करा को चावल के पानी या माँड़ से देने से आँतों के घाव भर जाते हैं और रक्त का आना बंद होता है। (छ) बेलगिरी और गुड़ को मट्ठे (छाछ) के साथ दें।

अतिसार के उपचार के लिए प्रायः किसी दवाई की आवश्यकता नहीं होती, किंतु यदि मल में रक्त आ रहा हो तो तुरंत चिकित्सक के पास जाना चाहिए। अतिसार के साथ यदि तेज बुखार हो तो भी चिकित्सक के परामर्श के बिना दवाई न लें।

- अर्श (बवासीर) रोगी को बेल की छाल के काढ़े में सुखोष्ण (जितना गरम सहन होता हो) में बैठा कर सिकाई कराएँ।
- विबंध (कब्ज)– पके बेल के फल के गूदे को जल में शरबत बनाकर दें, इससे पुराने विबंध, अर्श व कुपचन में लाभ होता है तथा अफारा नहीं होता।
- गरमी में बेल का शर्बत बहुत लाभ करता है।
- बार-बार कभी विबंध भी अतिसार होता हो तो सुबह-सुबह बेल का शर्बत दें।
- आँतों में यदि घाव (व्रण) हो तो कुछ दिन लगातार बेल के उपयोग से वह भर जाता है।
- बेल के ताजे पत्तों का रस, पीलिया और ज्वर में लाभ करता है।
- दमा के रोगियों को बेल के पत्तों का काढ़ा दें।
- नेत्राभिष्यंद– आँखों का लाल होना (आना) सूजन में पत्तों का रस आँख में डालें और पत्तों को पीसकर पलकों पर लेप करें।
- शोथ (सूजन) होने पर पत्तों का पुटिस बाँधें।
- कामला (पीलिया) रोग में पत्तों का रस कालीमिर्च के साथ दें।
- मधुमेह में 10-20 मि. ली. रस दें।
- कान का बाधिर्य होने पर पत्तों से सिद्ध तैल का प्रयोग करें।

लेखिका अलीगढ़ यूनानी आयुर्वेदिक कॉलेज में प्रोफेसर है।

समाज के लिए घातक है
साइबर पोर्नोग्राफी

आचार्य विजय रत्नसुंदर
सुरिश्वर महाराज

स्वतंत्रता के मूल्य के संबंध में हमारी स्वयं की एक विचारधारा है और इस मामले में हमें पश्चिम का अनुकरण नहीं करना चाहिए। आज साइबर पोर्नोग्राफी, ह्यूमन ट्रैफिकिंग और सेक्स टूरिज्म जैसी अमानवीय प्रवृत्तियों के प्रचार का साधन बन गई है और यदि साइबर पोर्नोग्राफी को प्रतिबंधित नहीं किया गया तो ह्यूमन ट्रैफिकिंग की समाप्ति भी शायद संभव नहीं हो पाएगी। यही सब ऐसे कारण हैं जिनके आधार पर नारीवादी आंदोलन से जुड़े कई संगठन साइबर पोर्नोग्राफी का विरोध कर रहे हैं।

जब भी आप यह प्रश्न उठाओ कि दूध से क्या हासिल होगा ? तो इसका उत्तर हमेशा इस बात पर निर्भर करेगा कि आप दूध में क्या डालते हो या मिलाते हो। यदि आप चीनी डालते हो तो मिठास प्राप्त होगी और नीबू मिलाते हो तो फटा हुआ/बिगड़ा हुआ दूध प्राप्त होगा। यदि अम्ल डालते हो तो फिर जहर ही प्राप्त होगा। कहने का तात्पर्य है कि आप जैसा तत्त्व मिलाओगे, उसी के अनुसार दूध से नए उत्पाद की प्राप्ति होगी, अर्थात् हम वही हासिल (आउटपुट) करेंगे, जो हम उसमें निर्वेशित (इनपुट) करेंगे।

यही बात हमारे बालकों, किशोरों और युवाओं पर लागू होती है। ये सभी दूध की तरह पवित्र और ऊर्जापूर्ण हैं किंतु इसमें यदि हमने चीनी के स्थान पर नीबू या अम्ल मिलाया तो यही बच्चे वह हासिल नहीं कर पाएँगे जो

कि उनकी सहज स्वाभाविक क्षमता है। इन किशोरों और युवाओं के संबंध में वर्तमान भारत तीन चुनौतियों का सामना कर रहा है, जिनमें साइबर पोर्नोग्राफी, नशीले पदार्थ और हिंसा का समावेश होता है।

इस संबंध में हाल में भारत सरकार ने एक प्रशंसनीय पहल यह की थी कि उसने करीब 800 पोर्नोग्राफिक वेबसाइट को प्रतिबंधित कर दिया था किंतु अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के तथाकथित समर्थकों ने इस पहल का ऐसा विरोध किया कि सरकार को अपने कदम वापस लेने पर मजबूर होना पड़ा। निश्चित ही स्वतंत्रता एक सकारात्मक मूल्य है और हमारी संस्कृति में इस विशेष महत्त्व भी प्रदान किया गया है। यदि ऐसा न होता तो जैन धर्मानुयायी चंद्रगुप्त का पौत्र अशोक बौद्ध धर्मानुयायी न बन पाता। यह स्वतंत्रता के मूल्य के सर्वोच्च सम्मान का

साइबर पोर्नोग्राफी किशोरों और युवाओं को भ्रमित कर रही है, उनको नैतिक व भौतिक पतन की ओर ले जा रही है ।

उदाहरण है, जिसके समान अन्य उदाहरण शायद प्राचीन विश्व में और कहीं नहीं मिलते।

मैं भी स्वतंत्रता का प्रेमी और समर्थक हूँ और इसके साथ ही किशोरों और युवाओं के उज्ज्वल भविष्य के लिए चिंतित भी हूँ। इसी चिंता के समाधान के प्रति कार्रवाई करने के प्रयास में मैंने राज्यसभा की याचिका समिति के सम्मुख इस विषय पर एक याचिका दायर की थी, जिस पर उस समिति ने हाल ही में अपनी रिपोर्ट राज्यसभा के पटल पर प्रस्तुत की है।

इस संबंध में पहला मुद्दा यही है कि स्वतंत्रता का विरोध नहीं है, परंतु साइबर पोर्नोग्राफी किशोरों और युवाओं को भ्रमित कर रही है, उनको नैतिक व भौतिक

पतन की ओर ले जा रही है तथा उनको अपने उज्ज्वल भविष्य संबंधी लक्ष्य से विचलित कर रही है। किशोरावस्था की तो तीन मूलभूत विशेषताएँ होती हैं– जिज्ञासा, प्रयोगधर्मिता और साहस। इन्हीं विशेषताओं के साथ स्मार्ट मोबाइल के इस युग में जब कोई किशोर पोर्नोग्राफिक वेबसाइट के संपर्क में आता है (और यह संपर्क आज आसान, सर्वसुलभ और सस्ता भी हो गया है) तो अधिकांश मामलों में निश्चित ही वह उन्हीं समस्याओं का शिकार हो जाता है, जिनका उल्लेख आगे कर रहा हूँ।

मेरा विचार यह है कि देश के लोग ऐसे किशोरों और किशोरियों के हित में अपनी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सकारात्मक दिशा प्रदान करने के लिए तैयार होने चाहिए और हमारे संविधान में भी स्वतंत्रता के संबंध में युक्तियुक्त निर्बंधन (Reasonable Restriction) के विचार को स्वीकार किया गया है। ऐसे कई माता-पिता हैं, जो दसवीं-

बारहवीं की परीक्षा के वर्ष में अपने घर में से केबल टी.वी. भी हटा देते हैं। क्या यह किशोरों के हित में उन माता-पिताओं द्वारा स्वतंत्रता का त्याग नहीं है? क्या हमें हमारे सभी बच्चों के हित में स्वतंत्रता के मूल्य को एक सकारात्मक और रचनात्मक दिशा प्रदान करने के लिए तैयार नहीं होना चाहिए? या फिर ऐसा है कि बाजारवाद ने स्वतंत्रता को मुनाफाखोरों के हित तक ही सीमित कर दिया है ?

इस संबंध में दूसरा मुद्दा यह है कि हाल में महिलाओं के प्रति होने वाले अपराधों में, विशेषकर यौन अपराधों में तीव्र वृद्धि हुई है और ऐसे अपराधों में अनेक मामले ऐसे आए हैं, जिनमें आरोपी की आयु 18 वर्ष से कम उम्र की है और ऐसे मामलों में इन किशोरों ने भयानक क्रूरता का व्यवहार भी किया है। क्या हमने किशोरों के व्यवहार में आ रहे ऐसे परिवर्तनों के कारणों का कोई वैज्ञानिक विश्लेषण और अनुसंधान किया है ? मेरा यह विचार है, यदि ऐसा विश्लेषण करवाया जाए तो निश्चित ही प्रसार माध्यमों में बढ़ती अश्लीलता एक कारण के रूप में सामने आएगी। इस संबंध में वैश्विक स्तर पर कई साक्ष्य उपलब्ध हैं जिन पर विचार किया जाना चाहिए। बिना इस तरह के ठोस विश्लेषण किए इस संबंध में पोर्नोग्राफिक वेबसाइट को प्रतिबंधित करने का विरोध क्यों ? इस संबंध में मेरा यह मत है कि सरकार को समाजविज्ञानियों और अन्य विशेषज्ञों को शामिल करके एक समिति गठित करनी चाहिए, जो इस संबंध में गहन शोध व अनुसंधान करके समाज को सच्चाई से परिचित करवाए।

क्या अश्लीलतम वेबसाइटें कभी भी महिलाओं के कल्याण और सशक्तीकरण का माध्यम या कारण बन सकती हैं?

तीसरा मुद्दा यह है कि बाजार आधारित वर्तमान व्यवस्था में तथा युवा लोगों की दो-तिहाई संख्या की उपस्थिति जैसे तथ्यों के प्रकाश में यह निश्चित है कि यह पोर्नोग्राफी व्यवसाय तीव्र गति से फैल रहा है। क्या इस तरह के व्यवसाय का फैलना महिलाओं, विशेषकर किशोरियों के शोषण का एक कारण नहीं है ? क्या अश्लीलतम वेबसाइटें कभी भी महिलाओं के कल्याण और सशक्तीकरण का माध्यम या कारण बन सकती है ? जो लोग इन वेबसाइटों पर प्रतिबंध का विरोध कर रहे हैं क्या उन्होंने इस आयाम से कभी भी सोचा है? किसी प्रतिबंध का विरोध यदि मानवता के हित में है तो वह विरोध मानव इतिहास में आदर और प्रेरणा का स्रोत बन जाता है। क्या साइबर पोर्नोग्राफी पर प्रतिबंध का विरोध करने वाले मानवता के हित में यह कर रहे हैं ? मेरा निवेदन है, इस मुद्दे पर सभी लोग निष्पक्षता, मानवता और देश के भविष्य को ध्यान में रखकर सोचें तो शायद हम सभी के निष्कर्ष एक ही मंजिल पर आकर रुकेंगे और इस मुद्दे पर देश में आम सहमति का वातावरण विकसित हो पाएगा। हमें ध्यान रखना चाहिए कि स्वतंत्रता के मूल्य के संबंध में हमारी स्वयं की एक विचारधारा है और इस मामले में हमें पश्चिम का अनुकरण नहीं करना चाहिए। आज साइबर पोर्नोग्राफी, ह्यूमन ट्रैफिकिंग और सेक्स टूरिज्म जैसी अमानवीय प्रवृत्तियों के प्रचार का साधन बन गई है और यदि साइबर पोर्नोग्राफी को प्रतिबंधित नहीं किया गया तो ह्यूमन ट्रैफिकिंग की समाप्ति भी शायद संभव नहीं हो पाएगी। यही सब ऐसे कारण हैं, जिनके आधार पर नारीवादी आंदोलन से जुड़े कई संगठन साइबर पोर्नोग्राफी का विरोध कर रहे हैं। क्या ऐसे संगठन महिलाओं की स्वतंत्रता के विरोधी हैं? यदि नहीं, तो फिर हमें गहराई से और सभी आयामों को साथ लेकर यह सोचना चाहिए कि ऐसे संगठनों द्वारा साइबर पोर्नोग्राफी का विरोध क्यों हो रहा है? चौथा मुद्दा यह है कि स्वतंत्रता के कुछ तथाकथित समर्थक ऐसा मानते हैं कि रूढ़िवादी और संस्कृति के

समर्थक पोर्नोग्राफी का विरोध कर रहे हैं और उनकी यही मान्यता के आधार पर वे दलील देते हैं कि भारत में खजुराहो के मंदिर में शिल्प पोर्नोग्राफी नहीं तो और क्या है ? उनकी इस दलील का उत्तर यही है कि इन मंदिरों के बाहर की दीवारों पर ही ऐसे शिल्प हैं, जबकि मंदिर के अंदर की दीवारों पर ऐसा कोई शिल्प नहीं है, जो शारीरिक खुलेपन या अश्लीलता से संबंधित हो। इन मंदिरों में ऐसे शिल्प के माध्यम से एक अवधारणा को स्थापित करने का प्रयास किया गया है कि 'बाहर काम है, और अंदर राम', अर्थात् यदि बाह्य भौतिक संसार में खो जाओगे तो 'काम' ही जीवन बन जाएगा और यदि व्यक्ति अपने अंतर्मन में जाएगा, अंदर की ओर जाएगा तो वहाँ 'राम' ही हैं। इस अवधारणा का उपयोग आज कौन सी दलील देने में हो रहा है ? यह दुःखद आश्चर्य है !

और सबसे बड़ी बात, साइबर पोर्नोग्राफी का विरोध संस्कृति रक्षा का विषय बाद में होगा या हो सकता है, किंतु सर्वप्रथम तो यह मानवता की रक्षा का विषय है। संविधान में लिखित आदर्शों और मूल्यों की रक्षा का विषय है। यदि पोर्नोग्राफिक वेबसाइट पर प्रतिबंध संवैधानिक नहीं है तो फिर फिल्मों के लिए बना सेंसर बोर्ड भी क्या असंवैधानिक है ?

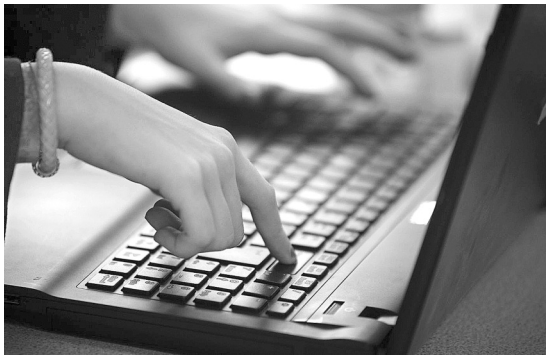

साइबर पोर्नोग्राफी का विरोध संस्कृति रक्षा का विषय बाद में होगा या हो सकता है, किंतु सर्वप्रथम तो यह मानवता की रक्षा का विषय है। संविधान में लिखित आदर्शों और मूल्यों की रक्षा का विषय है।

मेरा यह निवेदन है कि इस विषय पर मानवता, संवैधानिक आदर्श, महिलाओं की सुरक्षा व सशक्तीकरण तथा किशोरों व युवाओं के उज्ज्वल भविष्य को ध्यान में रखकर विचार किया जाए, न कि केवल एकमात्र स्वतंत्रता के मूल्य के आधार पर। हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि संविधान-निर्माताओं ने स्वतंत्रता के मूल्य को सामुदायिक हित में सीमित करने के विचार को स्वीकृति प्रदान की है और यही वास्तविक स्वतंत्रता है, जो कि देश के प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता के उपभोग के लिए समर्थ बनाती है। हमें याद रखना चाहिए कि भारत में 'स्वतंत्रता' किसी तथाकथित शक्तिशाली वर्ग की गुलाम नहीं रह सकती, जैसा कि हम अमेरिका में देखते हैं, जहाँ स्वतंत्रता का अर्थ है 'गोरों की स्वच्छंदता तथा काले लोगों की दासता'।

हमारा संविधान एक सामासिक संस्कृति (Composite culture) के विकास के लिए समर्पित है, जिसके आधारस्तंभ स्वतंत्रता, न्याय, समानता और बंधुता हैं। हमें इस सामासिक संस्कृति के लिए समाज के किशोरों और युवाओं जैसे ऊर्जावान हिस्से, तथा महिलाओं जैसे सामाजिक रूप से वंचित हिस्से दोनों के हित में सोच बनाने का प्रयास करना चाहिए और इसीलिए मैं इस संबंध में दूध में चीनी मिलाने का विचार प्रस्तुत करता हूँ और इसके लिए प्रयासशील हूँ, ताकि देश में न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुता रूपी मिठास बढ़ती चली जाए। देश में अभी इस संबंध में बहस चल रही है और इस बहस को आगे बढ़ाना चाहिए तथा जो सचमुच भारतीय समाज के हित में है, उन बातों को सरकार की नीतियों का आधार बनाया जाना चाहिए। ■

लेखक प्रसिद्ध जैन संत हैं।

डॉ. रवीद्र अग्रवाल

अंतहीन समस्याओं से पीड़ित गाँव व शहर

विकास की जिस अधकचरी सोच के कारण जीवनदायी नदियाँ और प्राणवायु आज जहरीली हो गई हैं, उसी विकृत सोच के चलते आज देश के सभी शहर और गाँव अंतहीन समस्याओं से पीड़ित हैं। आजादी प्राप्त करने के बाद देश को समृद्ध बनाने और देशवासियों का जीवन स्तर सुधारने के नाम पर औद्योगिकीकरण और शहरीकरण का जो रास्ता चुना गया उससे समस्याओं का निदान तो नहीं हुआ, इसके बदले आज ये समस्याएँ नए-नए रूप धारण कर सुरसा की तरह मुँह बाए हमारे सामने खड़ी हैं।

आजादी के बाद 1951 में देश की 36.11 करोड़ आबादी में से 29.86 करोड़ (82.7 प्रतिशत) लोग गाँवों में रहते थे और खेती व कुटीर उद्योगों पर निर्भर थे। तब के नीति निर्माताओं ने देश की गरीबी और पिछड़ेपन के लिए इन गाँवों को जिम्मेदार मानते हुए, गाँवों पर निर्भरता कम करने के लिए शहरीकरण को प्रोत्साहित किया; यह जाने-समझे बिना कि जो देश इन गाँवों के रहते हुए भी सोने

की चिड़िया था, वह पिछले हजार-बारह सौ साल में कंगाल क्यों हो गया? तब यदि इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ लिया जाता, तो देश के विकास और समृद्धि का मार्ग निर्धारित करना हमारे लिए ज्यादा हितकारी होता। परंतु हमने मशीनीकरण के सहारे औद्योगिकीकरण से बौराए हुए यूरोप, अमेरिका और सोवियत संघ का अंधानुकरण करते हुए शहरीकरण का जो मार्ग चुना, वह आज हमारे लिए आत्मघाती सिद्ध हो रहा है।

भुखमरी में शीर्ष पर भारत

बहुत संभव है कि एक वर्ग इस बात से असहमति व्यक्त करे और यह कहे कि दुनिया के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने के लिए हमारे पास यही एकमात्र रास्ता था। परंतु अब प्रश्न यह है कि क्या हम दुनिया के साथ कदम से कदम मिलाकर चल सकने में समर्थ हुए या जिन देशों को हमने आदर्श मानते हुए उनकी नकल करनी चाही, अब हम उनसे दिन-प्रतिदिन पिछड़ते चले जा रहे हैं? हम आज भले ही यह दावा करें कि हमारी सकल घरेलू विकास दर (जीडीपी) दुनिया में सबसे ज्यादा है, परंतु इसके साथ ही एक कटु सत्य यह है कि आजादी के 67 साल बाद भी भारत अपने नागरिकों को भरपेट भोजन देने में समर्थ नहीं हुआ, उन्हें एक स्वतंत्र देश के नागरिक के नाते सम्मानपूर्वक जीवन की गारंटी देना तो बहुत दूर की बात है। 29 मई, 2015 को समाचार-पत्रों में प्रकाशित संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत के 19.4 करोड़ लोग भरपेट भोजन न मिल पाने के कारण रात को भूखे पेट सोने को मजबूर हैं। ऐसा नहीं कि भूखे पेट सोने वाले केवल भारत में ही

2004 से 2014 के दौरान राजधानी दिल्ली में गरमी व ठंड से मरने वाले अभागे बेघर लोग

अप्रैल	2497
मई	2887
जून	3434
जुलाई	2971
योग	11789
अक्तूबर	2717
नवंबर	2499
दिसंबर	2481
जनवरी	2453
योग	10150
कुल योग	21939

स्रोतः दैनिक जागरण, नई दिल्ली, दिनांक 24 मई, 2015

हम आज भले ही यह दावा करें कि हमारी जीडीपी दुनिया में सबसे ज्यादा है, परंतु इसके साथ ही एक कटु सत्य यह है कि आजादी के 67 साल बाद भी भारत अपने नागरिकों को भरपेट भोजन देने में समर्थ नहीं हुआ।

हैं, परंतु दुख की बात यह है कि भूखे पेट सोने वालों में भारत शीर्ष पर है। दुनिया के बहुत से देश इस समस्या से जूझ रहे हैं और वे इसका समाधान भी कर रहे हैं, परंतु सरकारी आँकड़ों के अनुसार भारत विकास में कुलाँचें मारने के बावजूद अपने नागरिकों का पेट भर पाने के मामले में सबसे फिस्सड्डी सिद्ध हो रहा है। उक्त रिपोर्ट के अनुसार 1990-92 में दुनिया भर में भूखे पेट सोनेवालों की संख्या एक अरब थी, इनमें से भारत में भूखे पेट सोनेवालों की संख्या 20.11 करोड़ थी अर्थात् 20 प्रतिशत। दुनिया भर में भूख मिटाने के प्रयत्नों के चलते 2014-15 में भूखे पेट सोनेवालों की संख्या घटकर रह गई 79.5 करोड़ और भारत में ऐसे लोगों की संख्या 20.11 करोड़ से घट कर हुई 19.4 करोड़ अर्थात् पिछले 25 वर्षों में हम केवल 61 लाख लोगों को ही भूख की जद से बाहर निकाल पाए। हमारी इस कछुआ चाल का दुष्प्रभाव यह हुआ कि 1990-92 में दुनिया में भूखे पेट सोने वालों में जहाँ हर पाँचवाँ व्यक्ति भारतीय होता था, वहीं आज हर चौथा व्यक्ति भारतीय है। इसे संयोग कहें या नीतियों का दिवालियापन कि 1990-92 के दौर में ही प्रसिद्ध अर्थशास्त्री वित्त मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने कारों का उत्पादन बढ़ाकर भारत की हर समस्या का समाधान करने के सपने दिखाए गए थे, परंतु भारत की समस्याओं का समाधान तो दूर, हम अपने देश में भूख से पीड़ित नागरिकों को दो जून की भरपेट रोटी दे पाने में भी समर्थ नहीं हो सके।

गाँवों में शौचालय नहीं

आजादी के 67 वर्षीय विकास की एक शर्मनाक बानगी और– इन 67 वर्षों में हम अपने देश की महिलाओं के लिए शौचालय भी उपलब्ध नहीं करा पाए। कितनी शर्मपूर्ण गाथा है हमारे विकास की! दुनिया का

गाँव जहाँ मूलभूत आवश्यकताओं के लिए तड़पते रहे वहीं हमने अपने सभी उपलब्ध संसाधन शहरों में उडेल दिए। जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि लोग गाँवों से उजड़ कर शहरों में आ बसे, हमने शहरों को आकर्षण का केंद्र तो बना दिया परंतु यहाँ आवश्यक सुविधाएँ जुटाने में नाकाम रहे।

शायद ही कोई ऐसा देश हो जहाँ महिलाएँ खुले में शौच जाने के लिए रात का अँधेरा होने का इंतजार करती हों! इस अँधेरे से भारत कब उबरेगा? एक-दो नहीं, अनेकों प्रश्न हैं। इन प्रश्नों का क्या कोई उत्तर है, पश्चिम की नकल पर आधारित विकास का ढाँचा खड़ा करने वाले पैरोकारों के पास?

बेमौत मरने को मजबूर बेघर

आजादी के आंदोलन के दौरान देशवासियों ने जो अपेक्षाएँ की थीं उनके पूरा न होने का एकमात्र कारण

अंधानुकरण आधारित शहरीकरण और औद्योगिकीकरण है। शहरीकरण की जिद्द के चलते हमने अपने गाँवों की पूरी तरह उपेक्षा की। गाँव जहाँ मूलभूत आवश्यकताओं के लिए तड़पते रहे, वहीं हमने अपने सभी उपलब्ध संसाधन शहरों में उँडेल दिए। जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि लोग गाँवों से उजड़कर शहरों में आ बसे, हमने शहरों को आकर्षण का केंद्र तो बना दिया परंतु यहाँ लोगों के लिए आवश्यक सुविधाएँ जुटाने में नाकाम रहे, जिसके कारण शहरों और महानगरों में झुग्गी-झोंपडियों और स्लम बस्तियों की बाढ़-सी आ गई। महानगर के आकर्षण से भ्रमित होकर दिल्ली आने वाले, गाँवों के हजारों लोग राजधानी की सड़कों पर खुले में सोने को मजबूर हैं। गरमी-सर्दी हो या बरसात, नीला आसमान ही इनकी छत होती है। नीली छत के नीचे सोना इनके लिए कितना भारी पड़ता है, यह इसी आँकड़े से पता चलता है कि राजधानी दिल्ली में वर्ष 2004 से 2014 के बीच जिन 22 हजार लोगों की मौत लू या ठंड लगने से हुई, उनमें से अधिकांश बेघर थे। लेकिन दुर्भाग्य की बात यह है कि विकास के लंबे-चौड़े दावे करने वाली सरकारों के कान पर इन 22 हजार मौतों से जूँ तक नहीं रेंगी। यही कारण है कि दिल्ली में अभागे बेघर लोगों के बेमौत मरने का सिलसिला बदस्तूर जारी है, जिस वजह से पहली से 22 मई 2015 तक राजधानी दिल्ली की सड़कों पर गरमी से बेहाल 186 बेघरों की मौत हो गई।

महानगरों में समस्याओं का अंबार

महानगरों में आवास तो गंभीर समस्या बना ही, इसके साथ ही पानी, बिजली, स्वास्थ्य सेवाएँ, शिक्षा और परिवहन व्यवस्था भी असाध्य समस्या बन गई। परिवहन समस्या सुलझाने के लिए कारों को प्रोत्साहित किया तो वायु प्रदूषण इतना बढ़ा कि जो अब जानलेवा बन गया। परिवहन सुगम करने के लिए मेट्रो रेल लाए तो वह इतनी महँगी कि अकेले दिल्ली में मेट्रो पर अब तक एक लाख करोड़ रुपए से ज्यादा खर्च करने के बाद भी समस्या जस की तस है। महानगर के अस्पतालों में मरीजों की भीड़ देखकर लगता है कि शायद पूरा महानगर ही बीमार है। पीने के पानी के लिए रोज संघर्ष होना दिल्ली के लिए

यदि हमने गाँवों की शक्ति का अहसास कर शहर के बजाय गाँव को विकास का केंद्र बनाया होता तो आज स्थिति पूरी तरह भिन्न होती, गाँवों में आवश्यक सुविधाएँ मिलती और कानून-व्यवस्था में सुधार हुआ होता।

काई नई बात नहीं है। दिल्ली में भीख माँगना अपराध होने के बावजूद हर चौराहे पर भीख माँगते बच्चे यह सोचने को मजबूर कर देते हैं कि क्या यह वही भारत है, जिसका सपना आजादी के लिए फाँसी के तख्ते पर झूल जाने वाले स्वतंत्रता सेनानियों ने देखा था और जिसके लिए हम शहरीकरण के रास्ते पर चले थे?

यदि हमने गाँवों की शक्ति का अहसास कर शहर के बजाय गाँव को विकास का केंद्र बनाया होता तो आज स्थिति पूरी तरह भिन्न होती, गाँवों में आवश्यक सुविधाएँ मिलतीं और कानून-व्यवस्था में सुधार हुआ होता तो कोई अनावश्यक रूप से अपना घर छोड़ परदेस जाकर अपमानजनक जिंदगी जीने को मजबूर न होता। डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम जब राष्ट्रपति थे, तब उन्होंने गाँवों की दशा सुधारने के लिए गाँवों में शहरी सुविधाएँ उपलब्ध कराने का महत्त्वपूर्ण सुझाव दिया था, परंतु उनकी बात अनसुनी कर दी गई।

खेती पर निर्भर शेयर बाजार

विकास के पश्चिम आधारित मॉडल के कारण आजकल प्रत्येक क्षेत्र यहाँ तक कि परिवार में व्यक्ति का आकलन भी उसकी उत्पादकता (जीडीपी) में उसके योगदान के आधार पर किया जाने लगा है। (यही कारण है कि सेवा-निवृत्ति के बाद सामान्य रूप से व्यक्ति की हैसियत 'दूध न देने वाली गाय' की मान ली जाती है, जिसका अंतिम आश्रय स्थल गौशाला रूपी वृद्धाश्रम या फिर उसे कसाई के हाथों सौंप देना होता है।) कृषि का आकलन भी केवल जीडीपी में उसके योगदान के आधार पर किया जाने लगा है। अतः सकल घरेलू उत्पाद में 14 प्रतिशत की हिस्सेदारी उद्योग व सेवा क्षेत्र के मुकाबले बहुत गौण समझी जाती है। अगर यह सोच सही है तो मानसून कमजोर रहने का समाचार छपने मात्र से ही मुंबई शेयर बाजार का सूचकांक दो दिन में ही 1011 अंक अर्थात् 3.6 प्रतिशत का गोता क्यों लगा लेता है? जिसके कारण शेयर बाजार के पूँजीकरण में एक ही झटके में दो लाख करोड़ रुपए से ज्यादा का नुकसान हो जाता है। आखिर देश की अर्थव्यवस्था का बैरोमीटर समझे जाने वाले 'महाप्रभु शेयर बाजार' का मानसून से क्या लेना-देना? मानसून का संबंध तो सीधे-सीधे गरीब और गँवार समझे जाने वाले किसान एवं खेती से है।

वास्तव में जीडीपी के आधार पर कृषिक्षेत्र का आकलन

करना खेती-किसानी ही नहीं, पूरे देश के साथ अन्याय करना है। वास्तविकता यह है कि पहली पंचवर्षीय योजना से ही गाँव व कृषि के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार किए जाने के बावजूद देश के 65 प्रतिशत से अधिक लोग आज भी गाँव व खेती पर निर्भर हैं। 2011 की जनगणना के

अनुसार 54.6 प्रतिशत (लगभग 65 करोड़) रोजगारों का सृजन कृषि क्षेत्र में हो रहा है, जबकि जिस संगठित क्षेत्र को सभी तरह की सुविधाएँ और रियायतें उपलब्ध कराई जाती हैं, वह केवल 2.95 करोड़ लागों को ही रोजगार दे पा रहा है। इसमें से 1.76 करोड़ रोजगार सरकारी क्षेत्र और 1.19 करोड़ रोजगार निजी क्षेत्र द्वारा उपलब्ध कराए गए।

देश में उत्पादन और निर्यात के आँकड़े देखें तो विकास के तथाकथित केंद्र शहर और महानगर आज भी पूरी तरह गाँव पर निर्भर हैं। कृषि क्षेत्र ने हर तरह की उपेक्षा सहते हुए भी न केवल देश को खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर बनाया वरन् निर्यात के क्षेत्र में भी उसकी धाक है और इनके निर्यात में निरंतर वृद्धि हो रही है। 2013-14 में अनाज, चाय, कॉफी, मसाले, काजू, फल-सब्जियों, कपास आदि कृषि और संबंधित वस्तुओं

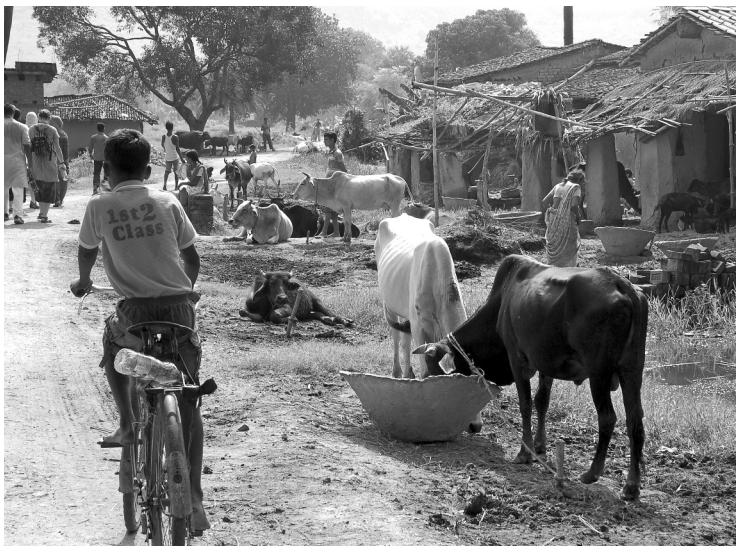

का निर्यात कुल निर्यात का 13.8 प्रतिशत रहा। इसके साथ ही कृषि आधारित कच्चे माल से विनिर्मित वस्तुओं, जैसे– सूती धागे, वस्त्र, सिले-सिलाए वस्त्र आदि का निर्यात कुल निर्यात का 6.7 प्रतिशत रहा। इस प्रकार दोनों वर्गों का निर्यात 20.5 प्रतिशत रहा, जबकि 2010-11 में कुल निर्यात में इनकी हिस्सेदारी 16.4 प्रतिशत थी। यही नहीं कपड़ा, चीनी, कागज, जूट व टिंबर उद्योग आदि बहुत से उद्योग कच्चे माल के लिए पूरी तरह कृषि क्षेत्र पर ही निर्भर हैं। वस्तुतः यही कारण है कि मानसून में कमजोरी की खबरों के साथ ही मुंबई शेयर बाजार का सूचकांक दो दिन में 3.6 प्रतिशत फिसल गया। इससे स्पष्ट है कि तेजी से बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था के चलते, जीडीपी में कृषि क्षेत्र का योगदान 14 प्रतिशत से घट कर इकाई अंक पर भी पहुँच जाए तो भी देश की अर्थव्यवस्था और समाज में कृषि क्षेत्र का महत्त्व किसी भी प्रकार घटने वाला नहीं है। परंतु खेद की बात है कि अर्थशास्त्री और नीति-निर्माता इस सत्य को स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं और वे यह मानकर योजनाएँ बनाते चले आ रहे हैं कि गरीबी का एकमात्र कारण गाँव हैं, और अगर देश को समृद्ध बनाना है तो लोगों को बड़ी संख्या में खेती-किसानी से निकाल कर शहरों में बसाना जरूरी है। यही कारण है कि योजनाएँ बनाते समय गाँव व खेती की उपेक्षा की जाती रही है।

गाँव नहीं हैं सरकार की प्राथमिकता

जिस कृषि क्षेत्र पर देश की 65 प्रतिशत आबादी निर्भर है, उसके लिए 11वीं पंचवर्षीय योजना (2007-12) में कृषि विभाग के लिए 87,339 करोड़ रुपए के बजट का प्रावधान किया गया था और वास्तविक व्यय इसका केवल 87 प्रतिशत (75,597 करोड़ रुपए) ही हुआ। जबकि इसके विपरीत नागरिक उड्डयन विभाग के लिए 1,42,760 करोड़ रुपए की योजना बनाई गई, इसमें से 49,267 करोड़ रुपए का केंद्र सरकार के बजट में प्रावधान किया गया और 93,493 करोड़ रुपए निजी क्षेत्र से जुटाने का लक्ष्य रखा गया। दिल्ली, मुंबई, कोच्चि,

वास्तव में रेलवे और हवाई अड्डों के लिए एक समान बजट का आवंटन सरकार की प्राथमिकता को दरशाता है। इस से स्पष्ट है कि सरकार की प्राथमिकता में गाँव और गरीब किसान कहीं नहीं है, वरन् उसके लिए महानगर सब कुछ हैं। इसीलिए सरकार महानगरों के हवाई अड्डों पर इतनी मेहरबान हुई कि उनके लिए अपने खजाने से पैसा उपलब्ध कराने के साथ ही राजधानी दिल्ली में हजारों एकड़ जमीन भी एक निजी उद्यमी को कौड़ियों के दाम सौंप दी।

हैदराबाद और बैंगलुरु इन पाँच हवाई अड्डों के विकास पर 42,500 करोड़ रुपए खर्च किए गए, जिनमें से 12,500 करोड़ रुपए भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण ने खर्च किए और 30,000 करोड़ रुपए निजी क्षेत्र ने।

कहा जा सकता है कि हवाई अड्डों के विकास पर खर्च किया गया धन वास्तव में देश में परिवहन क्षेत्र की स्थिति सुधारने के लिए है। यदि परिवहन क्षेत्र को सुधारने के तर्क के आधार पर ही आकलन करें तो भी सरकार की प्राथमिकताएँ प्रश्नों के घेरे में हैं! परिवहन के नक्शे पर देश को उत्तर से दक्षिण व पूर्व से पश्चिम को जोड़ने और गरीब से गरीब आदमी को दूर-दराज में स्थित उसके गंतव्य स्थान तक पहुँचाने में रेलवे की भूमिका सर्वविदित है। परिवहन क्षेत्र में इतनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली रेलवे के लिए 11वीं पंचवर्षीय योजना में कुल 2,19,717 करोड़ रुपए की परियोजना बनाई गई और इसमें भी बजट प्रावधान केवल 50,063 करोड़ रुपए के लिए किया गया। आम आदमी की सवारी रेलगाड़ी के लिए, संसाधनों की कमी का हवाला देते हुए, 50,063 करोड़ रुपए का बजट प्रावधान, जबकि चकाचौंध से भरपूर गिने-चुने हवाई अड्डों के लिए 49,267 करोड़ रुपए की दरिया दिली! क्या परिवहन की दृष्टि से रेलवे और हवाई अड्डों का महत्त्व एक समान कहा जा सकता है? वास्तव में रेलवे और हवाई अड्डों के लिए एक समान बजट का आवंटन सरकार की प्राथमिकता को दरशाता है। इस से स्पष्ट है कि सरकार की प्राथमिकता में गाँव और गरीब किसान कहीं नहीं है, वरन् उसके लिए महानगर सबकुछ हैं। इसीलिए सरकार महानगरों के हवाई अड्डों पर इतनी मेहरबान हुई कि उनके लिए अपने खजाने से पैसा उपलब्ध कराने के साथ ही राजधानी दिल्ली में हजारों एकड़ जमीन भी एक निजी उद्यमी को कौड़ियों के दाम सौंप दी। (यह अलग बात है कि सीबीआई को इसमें कुछ गड़बड़ी महसूस हुई तो वह अब इसकी जाँच में जुटी है।) इससे स्पष्ट है कि सरकार निरंतर कृषि क्षेत्र की उपेक्षा करती आ रही है। पिछले 20 वर्षों में लगभग तीन लाख किसानों द्वारा आत्महत्या करना इसी उपेक्षा का परिणाम है। वर्ल्ड बैंक रिटर्न अर्थशास्त्री और उनके हिंदुस्तानी अनुयायी अभी तक यह नहीं समझ पाए कि किसानों की आत्महत्या का सिलसिला रुकने का नाम क्यों नहीं ले रहा है? गड़बड़ यह है कि ये अर्थशास्त्री अमेरिका और वर्ल्ड बैंक का चश्मा पहनकर ही भारत की हर समस्या का समाधान ढूँढ़ना चाहते हैं।

विकास–नकल हमेशा नकल ही रहेगी

वास्तव में अगर भारत को फिर से सोने की चिड़िया बनाना है तो ऐसा अमेरिका, सोवियत संघ, यूरोप या चीन और सिंगापुर की नकल करके नहीं किया जा सकता, क्योंकि नकल हमेशा नकल ही रहेगी। पिछले 67 वर्ष से हम जिन देशों की नकल कर उनकी बराबरी करना चाह रहे हैं, इस तरह ऐसा एक हजार वर्ष में भी नहीं हो सकता, क्योंकि पहली बात तो यह कि जब तक हम नकल कर कुछ कर पाएँगे तब तक ये देश बहुत आगे निकल चुके होंगे और दूसरे, भारत और इन देशों की सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक, पर्यावरणीय व राजनीतिक परिस्थितियाँ हम से बहुत भिन्न हैं। नीति-निर्माताओं को यह ध्यान रखना होगा कि किसी भी देश और समाज के

विकास में ये सब परिस्थितियां निर्णायक भूमिका निभाती हैं।

भारत में आर्थिक चिंतन और उन्नयन की समृद्ध परंपरा

भारत में आर्थिक चिंतन और उन्नयन की विस्तृत व समृद्ध परंपरा है। उसी के आधार पर भारत एक हजार वर्ष पूर्व सोने की चिड़िया था। विश्व के उत्पादन में हमारी 24-25 प्रतिशत की भागीदारी के साथ ही विश्व अर्थव्यवस्था पर मजबूत पकड़ थी। तब भी भारत शहरों में नहीं गाँवों में ही बसता था। तब की ग्रामीण व्यवस्था आज के मुकाबले कहीं ज्यादा सुदृढ और आत्मनिर्भर थी। भारत विश्व का अकेला ऐसा देश है, जिसने आर्थिक-व्यावसायिक गतिविधियों व कला-कौशल के अनुसार कर्म के आधार पर समाज का वर्गीकरण किया। इतना ही नहीं, चाणक्य आदि भारतीय मनीषियों ने हजारों वर्ष पूर्व समाज, कृषि-उद्योग, आर्थिक विकास व आयात-निर्यात में शासन की भूमिका की दृष्टि से मार्गदर्शन किया। यही वे सब तथ्य हैं, जिन्होंने भारत को सोने की चिड़िया बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सोने की चिड़िया क्यों हुई कंगाल

भारत के विकास और समृद्धि के लिए कोई नया मार्ग चुनने से पहले हमें उन कारणों की विशद विवेचना करनी चाहिए थी कि कभी 'सोने की चिड़िया' कहा जाने वाला भारत 1000-1200 वर्षों के कालखंड में कंगाल कैसे हो गया? क्या यहाँ के निवासियों ने पुरुषार्थ करना छोड़ दिया या पुरुषार्थियों के हाथ काटे गए और देश को लूटा गया? क्या भारतीय उद्योग अपनी मौत मरे या फिर विदेशी उद्योगों के उत्पाद भारत के बाजार में खपाने के लिए उद्योगों को जानबूझकर बरबाद किया गया? चाणक्य और अन्यान्य भारतीय मनीषियों के स्थान पर पश्चिम के विचारकों को देश पर क्यों थोपा गया? ऐसे अनेक प्रश्न हैं, जिनके उत्तर ढूँढ़ना, किसी भी विकास यात्रा को प्रारंभ करने से पहले बहुत आवश्यक हैं, जिसके बिना विकास यात्रा के वही दुष्परिणाम निकलेंगे जैसे कि आज हम जहरीली होती प्राणवायु और प्रदूषित होती गंगा-यमुना और बीमार होते खेतों के रूप में देख रहे हैं। आजादी के बाद से अब तक की विकास यात्रा के इन सब दुष्परिणामों का समन्वित योग अस्पतालों में कैंसर जैसे असाध्य रोगों से मौत का शिकार होते लोगों, किसानों की आत्महत्याओं, बढ़ती बेरोजगारी व भारत से हो रहे प्रतिभा पलायन व समाज में बढ़ते असंतोष व हिंसा के रूप में हमारे सामने आ रहा है। आप स्वयं सोचें कि जिस शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण कैंसर जैसे रोगों से मरने वालों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है, उसे विकास कहेंगे या विनाश!

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान महात्मा गांधी ने भारत को राजनीतिक स्वतंत्रता दिलाने के साथ ही आर्थिक स्वतंत्रता दिलाने का लक्ष्य भी निर्धारित कर लिया था। उन्होंने सोने की चिड़िया रहे भारत के कंगाल होने के कारणों की भली प्रकार विवेचना की थी। उन्होंने यह जान लिया था कि अंग्रेजों ने कैसे इंग्लैंड के उद्योग-धंधे चमकाने के लिए न केवल भारत के उद्योगों को योजनाबद्ध तरीके से नष्ट किया वरन् भारत को षड्यंत्रपूर्वक लूटा भी। (हिंदुस्तान और ब्रिटेन का आर्थिक लेन-देन- जे.सी. कुमारप्पा; अंग्रेजों से पहले का भारत-धर्मपाल) उन्होंने भारत के संसाधनों का उपयोग उपने उद्योगों के लिए कच्चे माल के रूप में किया और मनमाने तौर पर उसकी कम कीमत हमें दी, इसके विपरीत इंग्लैंड के उत्पादों से भारत के बाजार पाटकर मनमाना मुनाफा भी लूटा। ठीक ऐसे ही

जैसे आज मनमाने तरीके से किसानों को उनकी उपज की कम कीमत दी जा रही है और उससे उत्पादित उत्पाद महँगे दामों पर बेचकर मुनाफा काटा जा रहा है। एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ और संगठित उद्योग किसानों से गेहूँ 14-15 रुपए किलो खरीदकर उसका उसका आटा 27 से 40 रुपए किलो बेच रहे हैं। नमक 50 से 60 पैसे किलो खरीदकर उपभोक्ता को वही नमक आयोडाइज्ड के नाम पर प्रसंस्कृत कर 18 रुपए किलो बेचा जा रहा है। कोई पूछने वाला नहीं कि नमक के प्रसंस्करण में कितना खर्च आता है? किसान से दूध 28 रुपए लीटर खरीदकर और उसे थैली में पैक कर 48 रुपए बेचा जा रहा है। क्या दूध के प्रसंस्करण और पैकिंग में 20 रुपए खर्च होते हैं?

कैसे मिटे कंगाली

महात्मा गांधी ने भारत के किसान और शिल्पियों को ऐसी ही लूट से बचाने और स्वतंत्रता के लिए खादी को अपने हथियार के रूप में प्रयुक्त किया। उन्होंने हिंद स्वराज में यह स्पष्ट लिखा था, 'चरखे के जरिए हिंदुस्तान की कंगालियत मिट सकती है। और यह तो सबके समझ सकने जैसी बात है कि जिस रास्ते भुखमरी मिटेगी, उसी रास्ते स्वराज मिलेगा।' (सत्य के प्रयोग अथवा आत्म कथा–खादी का जन्मः पृ. 421)

खादी के माध्यम से वे न केवल स्वयं वरन् आजादी के आंदोलन को गाँवों तक ले गए, सीमित संसाधनों और स्वावलंबन के आधार पर गाँव वालों को गरीबी से मुक्त होने का रास्ता दिखाया। आज भी गांधी आश्रम के जो कार्यकर्ता गाँवों में कताई के लिए रुई की पूनियाँ लेकर जाते हैं, उन्हें 'गांधी' नाम से पुकारा जाता है। देश के आर्थिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि गाँवों को विकास का केंद्र बनाया जाए, न कि गाँवों से लोगों को

चरखे के जरिए हिंदुस्तान की कंगालियत मिट सकती है। और यह तो सबके समझ सकने जैसी बात है कि जिस रास्ते भुखमरी मिटेगी, उसी रास्ते स्वराज मिलेगा।

शहरों में खदेड़ा जाए।

एक कहावत है कि दूसरों का महल देखकर अपनी झोंपड़ी नहीं जलानी चाहिए। परंतु दुर्भाग्य की बात है कि हमने पश्चिम की नकल पर आधारित विकास करने के लिए अपनी झोंपड़ी में तो आग लगा दी, परंतु उनकी तरह का महल बनाने की सामर्थ्य हम पैदा नहीं कर पाए और ना ही कोई नया मॉडल प्रस्तुत कर पाए। हमने विकास के अपने रास्ते तो ध्वस्त कर दिए, परंतु पश्चिम के रास्ते पर चलकर हम अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहे हैं। देश के समग्र विकास के लिए बहुमुखी योजना बनाने की जरूरत है, जिससे गाँव भी समृद्ध हों, शहर दुनिया के लिए आदर्श बनें और भारत अंतरिक्ष की मंगल यात्रा कर सृष्टि के विकास की गुत्थी भी सुलझा सके। ■

लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं।

मनोगत

मान्यवर महोदय,

मंगल विमर्श का अक्तूबर 2015 अंक आपको सौंपते हुए प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। अत्यंत उत्साह की बात है कि मंगल विमर्श के प्रथम अंक से ही जहाँ पाठकों ने इसका भावपूर्ण स्वागत किया है, वहीं इससे सामाजिक सरोकारों पर सार्थक चर्चा भी प्रारंभ हो गई है। इस संदर्भ में विद्वान् पाठकों से प्राप्त कुछ पत्रों के महत्त्वपूर्ण अंशों को आपके समक्ष प्रस्तुत करने का लोभ सँवरण नहीं कर पा रहा हूँ।

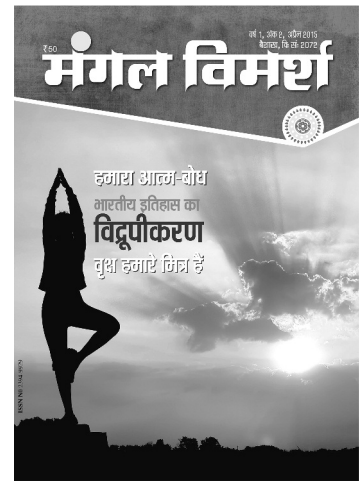

अहमदाबाद के श्री रमेश चंद्र शर्मा 'चंद्र' ने लिखा है– 'मंगल विमर्श के अप्रैल 2015 अंक में प्रकाशित लेख बड़े उत्कृष्ट हैं।' अल्ट्रा हेल्थ नेचर्स वे, सोनीपत के संपादक डॉ. शिवकुमार खंडेलवाल ने आशा व्यक्त की है कि 'मंगल विमर्श' पत्रिका पाठकों को भारतीय साहित्य, संस्कृति, दर्शन, इतिहास और परंपराओं के सम्यक् स्वरूप से परिचित कराने में बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी। इस अंक में प्रकाशित श्री बनवारीजी का लेख हमारा आत्मबोध, इसका प्रबल प्रमाण है। अन्य रचनाएँ भी किसी न किसी रूप में इसी तथ्य की पुष्टि करती हैं।'

भारतीय दर्शन अनुसंधान परिषद् के पूर्व सदस्य व कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के पूर्व अध्यक्ष डॉ. हिम्मत सिन्हाजी ने अपने विस्तृत पत्र में लिखा है, 'इस अंक में प्रकाशित सभी लेख अति ज्ञानवर्धक, चिंतनपरक तथा विवेकपूर्ण हैं। पहला लेख 'हमारा आत्म बोध' बहुत गहन अध्ययन पर आधारित हमारी सुप्त क्षमताओं को जगाने वाला है। भारतीय संस्कृति ने सदैव कर्तव्यपालन पर ही आग्रह किया है तथा उसी को धर्म माना है। गीता का यह वाक्य राज्यसभा सदन के मुख्य द्वार पर अंकित है- 'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः' अर्थात् जो अपने-अपने कर्तव्य कर्म को अभिरत होकर निभा देता है, वह सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है। 'वैदिक मूल्य परंपरा और संक्रांति' लेख अति सराहनीय है और लेखक की परम विद्वत्ता को प्रकाशित कर रहा है। सुधी लेखक ने चार पुरुषार्थों का विवेचन करते हुए कहा है कि 'साध्य मूल धर्म है।' यह थोड़ा चर्चा का विषय है। धर्म साध्य नहीं है अपितु साधन है। परम साध्य तो समाज है, ऐसा धर्म की परिभाषा से सिद्ध होता है। वैशेषिक सूत्र के अनुसार–

'यतो अभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः'

अर्थात् जिस से मनुष्य को इहलौकिक अभ्युदय तथा मोक्ष की सिद्धि होती है, उस को धर्म कहते हैं।

'भारतीय इतिहास का विद्रूपीकरण लेख' अति

प्रेरणाप्रद तथा सराहनीय है। भारतीय साम्यवादी वास्तव में किसी भी सिद्धांत को नहीं जानते। उनका वैचारिक स्तर पर उन्मूलन आवश्यक है, जिस पर सुधी लेखक ने सशक्त आग्रह किया है, वह बधाई के पात्र हैं। अन्य रचनाएँ भी श्लाघनीय हैं।'

कहना न होगा कि सुधी पाठकों के पत्र न केवल हमारा उत्साह संवर्धन करते हैं वरन् उनके महत्त्वपूर्ण सुझाव हमारा मार्गदर्शन भी करते हैं। वास्तव में आपके पत्र हमारे लिए आपका आशीर्वाद हैं। हमारा पूर्ण प्रयास है कि इन पत्रों के माध्यम से सुहृद् पाठकों ने जो सुझाव दिए हैं उन्हें कार्य रूप में परिणित किया जाए। आपसे अनुरोध है कि आप अपना स्नेह बनाए रखें और पत्रिका में प्रकाशित लेखों के बारे में अपनी बेबाक राय से हमें बेझिझक अवगत कराते रहें।

हमारा प्रयास है कि इस पत्रिका के माध्यम से समय-समय पर समाज के समक्ष उठने वाले विषयों व चुनौतियों पर हम सारगर्भित व जीवंत चर्चा प्रारंभ कर सकें, जिससे समाज इन पर गंभीरतापूर्वक चिंतन कर किसी सार्थक निष्कर्ष पर पहुँच सके। आज हम सभी इस बात से भली प्रकार अवगत हैं कि सामाजिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण विषयों पर सरकारें किस प्रकार राजनीति के कारण सच्चाई से मुँह मोड़ती हैं। हाल ही में साइबर पोर्नोग्राफी के मुद्दे पर केंद्र सरकार के रुख में आया परिर्वतन इस बात का ज्वलंत प्रमाण है। साइबर पोर्नोग्राफी के प्रति समय-समय पर समाज के प्रबुद्ध व्यक्तियों की ओर से चिंताएँ व्यक्त की जाती रही हैं। वरिष्ठ जैन संत आचार्य विजय रत्नसुंदर सुरिश्वरजी महाराज ने इस विषय पर राज्यसभा की याचिका समिति के समक्ष याचिका प्रस्तुत की थी। इस विषय पर समिति की रिपोर्ट इसी सत्र में राज्यसभा के पटल पर रखी जा चुकी है। केंद्र सरकार ने एक प्रशंसनीय पहल करते हुए लगभग 800 ऐसी वेबसाइटों को प्रतिबंधित कर दिया था, परंतु स्वतंत्रता के तथाकथित समर्थकों के दबाव के कारण सरकार को अपना कदम वापस लेने के लिए मजबूर होना पड़ा। इस अंक में इस संबंध में आचार्य विजय रत्नसुंदर सुरिश्वरजी महाराज की मानसिक पीड़ा को व्यक्त करता उनका एक लेख प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है कि इससे इस विषय पर समाज में सार्थक बहस प्रारंभ होगी, जिससे सरकार को अपने निर्णय पर पुनर्विचार के लिए बाध्य होना पड़े।

यह अकेला विषय नहीं है, जो कुत्सित राजनीति का शिकार हुआ है। जनगणना, जातिगत आरक्षण, परिवार, समलैंगिक विवाह, रोजगार, शिक्षा और भाषा आदि अनेक ऐसे विषय हैं, जिनसे ऐसा प्रतीत होता है कि आज समाज राजनीति का बंधक बनकर रह गया है, जबकि वास्तविकता यह है कि राजनीति समाज के सुचारू संचालन के लिए होनी चाहिए, न कि समाज को राजनीति का बंधक बना दिया जाए, जिससे व्यक्ति, परिवार और समाज तथा इनके आपसी संबंध किसी प्रकार प्रभावित न हों। परिवार से लेकर अंतरराष्ट्रीय स्तर तक संबंधों का विशेष महत्त्व होता है। विभिन्न स्तरों पर संबंधों को सुमधुर बनाए रखने की दृष्टि से मानव महत्त्वपूर्ण कारक होता है। भारतीय मनीषा ने समय-समय पर इस विषय पर गहन चर्चा की है, परंतु आज सभी स्तरों पर संबंधों में आई दरारें स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं, जिससे परिवार से लेकर अंतरराष्ट्रीय स्तर तक पूरी दुनिया पर हिंसा और आतंक का साया मंडरा रहा है। इस घातक स्थिति से समाज को कैसे बचाया जाए, इस विषय को लेकर मंगल विमर्श सार्थक चर्चा प्रारंभ कर रहा है और अगले अंक में प्रमुख चिंतकों के आलेख प्रकाशित किए जाएँगे। इसके साथ ही आप सब के सहयोग के लिए आपका बहुत-बहुत धन्यवाद।

स्नेहाकांक्षी
आदर्श गुप्ता
प्रबंध संपादक

सहयोगी वृंद

1. एल डी डी एन इम्पेक्स
ई-37, एस.एम.ए. इंडस्ट्रियल एरिया,
जी टी करनाल रोड, दिल्ली- 110033

2.जय इन इंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड
त्रिवेणी प्लाजा, 17 ऐ/56, डब्ल्यू ई ए
करोल बाग, दिल्ली- 110005

3.टीयू एंड कम्पनी
5/491, इंद्रा कॉलोनी, एटलस रोड,
सोनीपत, हरियाणा- 131001

4.बेस्ट फुड्स लिमिटेड
इंद्री, जिला करनाल,
हरियाणा- 132041

5.अलेन ओवरसीज प्राइवेट लिमिटेड
ए-120 , वजीरपुर इंडस्ट्रियल एरिया,
दिल्ली- 110052

6.रेकसन ट्रांसफार्मर्स प्राइवेट लिमिटेड
दुकान नंबर 16, लोकल शॉपिंग सेंटर -3,
सेक्टर -8, रोहिणी, दिल्ली- 110085

7.श्री कृष्ण तनेजा
14-बी, ध्रुव अपार्टमेंट, सेक्टर-13,
रोहिणी, दिल्ली- 110085

8.श्री दिनेश नारायण
148, धरम कुंज अपार्टमेंट, सेक्टर-9,
रोहिणी, दिल्ली- 110085

9.श्री मधुर तनेजा
14-बी, ध्रुव अपार्टमेंट, सेक्टर -13,
रोहिणी, दिल्ली- 110085

10.श्रीमती राज दीपिका
148, धरम कुंज अपार्टमेंट,
सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली- 110085

11.श्री राजेश गुप्ता
एजी -9, शालीमार बाग,
दिल्ली- 110089

12.श्रीमती शांति देवी
सी-30, अहिंसा विहार, सेक्टर- 9,
रोहिणी, दिल्ली- 110085

13.श्री राजीव चावला
309 , जय अपार्टमेंट , सेक्टर -9,
रोहिणी, दिल्ली - 110085

मंगल विमर्श

सदस्यता -प्रपत्र

मंगल विमर्श त्रैमासिक पत्रिका

मुख्य संरक्षक
डॉ. बजरंगलाल गुप्ता

प्रधान संपादक
ओमीश परुथी

संयुक्त संपादक
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

प्रबंध संपादक
आदर्श गुप्ता

सदस्यता -शुल्क

5 वर्षों के लिए
₹1000 मात्र

10 वर्षों के लिए
₹2000 मात्र

पत्रिका सदस्यता शुल्क हेतु
मंगल सृष्टि (Mangal Srushti)
के नाम चैक/ड्राफ्ट सी-84, अहिंसा विहार,
सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली- 110085 पर भेजें।
फोन नं. +91-9811166215,
+91-11-27565018

मंगल विमर्श की..... वर्षों की सदस्यता हेतु.....

रुपये का ड्राफ्ट/चैक क्रं. ..... दिनांक.....

बैंक..... भेज रहे हैं,

कृपया..... वार्षिक सदस्य बनाने का कष्ट करें।

नाम.....

पता.....

.....

..... पिनकोड .....

फोन :..... मोबाइल:.....

इ-मेल.....

इ-मेल mangalvimarsh@gmail.com **वेब साइट** www.mangalvimarsh.in

दिन प्रतिदिन की
छोटी-छोटी उपलब्धियों
से ही मिलकर
सफलता बनती है।